पाणिनि

तथा

संस्कृत के अन्य अल्पज्ञात कवियों की रचनायें

सम्पादक

डॉ० प्रभातशास्त्री

डी० लिट्०

उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ

Scanned by CamScanner

पाणिनि

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनुजाम्बवतीजयम्॥

राजशेखर

⊙

स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्यैव जातिभिः॥

महाकविक्षेमेन्द्र

Scanned by CamScanner

पाणिनि

यह एक आश्चर्यकारी सत्य है कि विख्यात वैयाकरण पाणिनि सरस रचनाकार भी रहे । पाणिनि का काव्य-वैभव कालिदासादि अग्रगण्य कवियों के काव्य से अधिक नहीं तो कथमपि अल्प भी नहीं कहा जा सकता । उनका काव्य प्रसाद, माधुर्य गुण एवं वैदर्भी शैली से मण्डित है। सरल, सरस, स्वाभाविक उक्तियों के संग उत्प्रेक्षादि अलंकारों का अभिनिवेश सहजतः प्राप्त होता है। सुभाषितग्रन्थों में संकलित छन्द प्रायः प्रकृतिवर्णन और नायक-नायिका अंकनपरक हैं ।

काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने इनकी परिगणना वररुचि, पतञ्जलि आदि के साथ किया है--

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः । दशमोऽध्याय

उन्होंने पाणिनि रचित महाकाव्य 'जाम्बवतीविजय' की भी चर्चा की है—

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनुजाम्बवतीजयम् ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में प्राचीनों की छन्द-कथन के प्रसंग में पाणिनि के उपजाति वृत्त की प्रशंसा की है--

स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः ।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः ॥

Scanned by CamScanner

'कथासरित्सागर' में इनका 'सुबन्धु' आदि के साथ उल्लेख कर उत्कृष्ट काव्यकार कहा गया है--'धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।'

स्थिति-काल

राजशेखर का समय नवीं शताब्दी है। क्षेमेन्द्र ग्यारहवीं शती पूर्व भाग के कवि हैं। इन दोनों ने पाणिनि को अपनी कृतियों में नामों का उल्लेख किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण है 'सुबन्धु' के साथ 'कथासरित्सागर' में इनके नामो की भी चर्चा की है। बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में 'सुबन्धु' का नामोल्लेख करते समय--'कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया' लिखा है। स्पष्ट है 'वासवदत्ता' का रचयिता बाण का पूर्ववर्ती था। बाण सातवीं शती के पूर्वार्द्ध के हैं। अतः 'सुबन्धु' इससे पूर्व आविर्भूत हुए, वह समय छठी शती का मध्य माना जा सकता है। पाणिनि एवं सुबन्धु की समसामयिकता पाणिनि को उसी अवधि [छठी शताब्दी का मध्य का] संकेतित करतो है।

पाणिनि का काव्य

'जाम्बवतीविजय' महाकाव्य की अनुपलब्धता से पाणिनि के प्रबन्ध कौशल का विवेचन करना असम्भव है। सुभाषितग्रन्थों में प्राप्त छन्दों से पता चलता है कि यह कवि निसर्ग के मनोरम चित्रण में प्रवीण है--

क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बुसरितां,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां, तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्।

वर्षा की-रात्रि का वर्णन है--समस्त सर तथा सरिताओं के जल को अपहृत कर, अपने प्रताप से पृथ्वी के सभी तरुराशि को सुखा कर निर्द्वन्द्व हो विचरण करनेवाला सूर्य दृष्टि-पथ से ओझल है। विस्मय की स्थिति कि प्रतापवान् सूर्य कहाँ गया? वर्षाकालीन बादल उसे ढूंढने का उपक्रम कर रहे हैं--

क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा-
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः।

तडित्रूपी दीप के प्रकाश में प्रत्येक दिशा में घूमते हुए बादल, प्रतीत होता है, उसे ढूंढने में तत्पर है।

Scanned by CamScanner

वर्षाकालीन एक अन्य दृश्य--

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो, मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
धारानिपातैः सह किन्नुवान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥

बादल बिजलीरूपी आँखों से रात के अन्धेरे में अभिसारिका का मुख देखकर इस भय से आर्त्तनाद कर उठा कि धारावर्षण के साथ ही यह चन्द्रमा धरती पर गिर पड़ा है।

ऋतु-चित्रण के अतिरिक्त सूर्यास्त, चन्द्रोदय, श्मशान आदि के वर्णन भी बड़े सार्थक हैं--

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या,
रवौ गते साधुकृतं नलिन्या ।
अक्ष्णां हि दृष्ट्वाऽपि जगत्-
समस्तं फलं प्रियालोकनमात्रमेव ॥

सूर्यास्त के समय--सूर्यास्त देखकर नलिनी ने भी आँखें मूँद लीं, कितना उचित किया। समस्त जगत् भले ही आँख देखती रहे किन्तु यदि प्रिय न दीखे तो समस्त वस्तुएँ व्यर्थ है।

उपोढरागेण विलोलतारकं,
तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया,
पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ॥

सम्भवतः कृष्णपक्षीय रात्रि का चित्रण है--आकाश में तारकदल उदय हो गये, चन्द्रमा ने स्वयं तत्स्वरूप बनने के लिए तिमिर रूप अंशुक धारण कर लिया। प्रतीत होता है, इसके पूर्व कभी किसी प्रकार रागात्मक भाव रहे ही नहीं।

जब कोई प्रिय अन्य के राग में अनुरक्त हो जाय तो पूर्वप्रिया म्लानमुख कर लेगी--

विलोक्य संगमे रागं, पश्चिमायाः विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या, नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

अस्ति प्रतीच्यां दिशि सागरस्य,
वेलोर्मिगूढे हिमशैल-कुक्षौ ।
पुरातनी विश्रुत-पुण्यशब्दा,
महापुरी द्वारवतीति नाम्ना ॥१

⊙

अनेन यात्रानुचितं धराधरैः,
पुरातनं साजलतं महीक्षिताम् ।
ददर्श सेतुं महतो जरन्तया,
विशीर्ण-सीमन्त इवोदयश्रिया ॥२

⊙

त्वया-सहार्जितं यच्च, यच्च सख्यं पुरातनम् ।
चिराय चेतसि पुनस्तरुणीकृतमद्य मे ॥३

⊙

क्षपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बुसरिताम्,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां, तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकन-परा—
स्तडिद्दीपालोका दिशि-दिशि चरन्तीह जलदाः ॥४

⊙

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो,
मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
धारानिपातैः सह किन्नु वान्त—
श्चन्द्रोयमित्यार्ततरं ररास ॥५

⊙

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं,
गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः ।

Scanned by CamScanner

अपश्यती वत्सामिवेन्दु-बिम्बं,
तच्छर्वरी गौरिव हुङ्करोति ॥६

⊙

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या,
रवौ गते साधु कृतं नलिन्याः ।
अक्ष्णां हि दृष्ट्वाऽपि जगत्समस्तं,
फलं प्रियालोकनमात्रमेव ॥७

⊙

उपोढ-रागेण विलोलतारकं,
तथा गृहीतं शशिना-निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया,
पुरोऽपि रागद्गलितं न लक्षितम् ॥८

⊙

विलोक्य सङ्गमे रागं, पश्चिमायाः विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या, नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥६

⊙

अथाससादास्तमनिन्द्य तेजा,
जनस्य दूरोज्झितमृत्युभीते ।
उत्पत्तिमद्वस्तु विनाश-वश्यं,
यथाहमित्येवमिवोपदेष्टुम् ॥१०

⊙

प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा,
प्रभा-दरिद्रः सवितापि जायते ।
अहो ! चला श्रीर्बत मानदामपि,
स्पृशन्ति सर्वं हि दशाविपर्यये ॥११

⊙

शुद्धस्वभावान्यपि संहतानि,
निनाय भेदं कुमुदानि चन्द्रः ।
अवाप्य वृद्धिं मलिनान्तरात्मा,
जडो भवेत् कस्य गुणाय वक्रः ॥१२

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण,
शरद्दधानार्द्र-नख-क्षताभम् ।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं,
तापं रवेरप्यधिकं चकार ॥१३

⊙

असौ गिरेः शीतल-कन्दरस्थः,
पारावतो मन्मथ-चाटु-दक्षः ।
घर्मालसाङ्गीं मधुराणि कूजन्,
संवीजते पक्षपुटेन कान्ताम् ॥१४

⊙

उद्बुद्धेभ्यः सुदूरं घनजनिततमः पूरितेषु द्रुमेषु,
प्रोद्ग्रीवं पश्य पाद-द्वय-नमित-भुवः श्रेणयः फेरवाणाम् ।
उल्कालोकैः स्फुरद्भिर्निजवदन-दरी सर्पिभिर्वीक्षितेभ्यः,
श्च्योतत्सान्द्रं वसाम्भः कुथितशववपुर्मण्डलेभ्यः पिबन्ति ॥१५

⊙

चञ्चत्पक्षाभिघातं ज्वलित-हुतवहप्रौढधाम्नश्चितायाः,
क्रोडाद् व्याकृष्ट-मूर्तेरहमहमिकया चण्ड-चञ्चूग्रहेण ।
सद्यस्तप्तं शवस्य ज्वलदिव पिशितं भूरिजग्ध्वार्द्धदग्धं,
पश्यान्तः प्लुष्यमाणः प्रविशति सलिलं सत्वरं वृद्धगृध्रः ॥१६

⊙

पाणौ शोण-तले' तनूदरि ! दर क्षामा कपोलस्थली,
विन्यस्ताञ्जन-दिग्ध-लोचनजलैः किं म्लानिमानीयते ।
मुग्धे ! चुम्बतु नाम चञ्चलतया भृङ्गः क्वचित्कन्दली-
मुन्मीलन्नव-मालती-परिमला, किं तेन विस्मार्यते ॥१७

⊙

मुखानि चारूणि, घनाः पयोधरा,
नितम्बगुर्व्यो जघनोत्तमश्रियः ।
तनूनि मध्यानि च, यस्य सोऽभ्य--
गात्कथं नृपाणां द्रविडीजनो हृदः ॥१८

⊙

पाणौ पद्मधिया मधूकमुकुलभ्रान्त्या तया गण्डयो-
र्नीलेन्दीवरशङ्कया नयनयोर्बन्धूकबुद्ध्याधरे ।

Scanned by CamScanner

लीयन्ते कबरीषु बान्धवजनव्यामोहबद्धस्पृहा,
दुर्वारा मधुपाः कियन्ति तरुणि ! स्थानानि रक्षिष्यसि ॥१९

⊙

कल्हारस्स्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात् कान्तिमद्भिः कराग्रैश्-
चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने संस्रमाने रजन्याः ।
अन्योन्यालोकिनीभिः परिचयजनितप्रेमनिःस्यन्दिनीभि-
र्दूरारूढे प्रमोदे हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः ॥२०

⊙

अनडुहि जितनीडजेन्द्रवेगे,
कृतनिविडासनमुज्झिताधपीडे ।
स्मरशमनतडित्कडारदृष्टि,
मृडमुडुराडुपशोभिचूडमीडे ॥२१

⊙

हरकोपानल-प्लुष्ट-विरूढस्मरशाखिनः ।
अयमाभाति तन्वङ्ग्याः पाणिः प्रथमपल्लवः ॥२२

⊙

नीलाम्भोरुहकानने न विशति ध्वान्तोत्कराशङ्कया,
स्वक्रीडोच्छलिताश्च वारिकणिकास्ताराभ्रमात् पश्यति ।
सत्रासं मुहुरीक्षते च चकितो हंसं हिमांशुभ्रमान्,-
न स्वास्थ्यं भजते दिवापि विरहाशङ्की रथाङ्गाह्वयः ॥२३

Scanned by CamScanner

योगेश्वर

बाणः सृष्टिमपूर्ववस्तुविषयामेकोऽत्र निर्व्यूढवा-
न्निषणातः कविकुञ्जरेन्द्रचरिते मार्गे गिरां वा गुरुः ।
वेधा विन्ध्यपुलिन्दपामरवधूभूगोलझञ्झानिल—
प्रायेऽर्थे वचनानि पल्लवयितुं जानाति योगेश्वरः ॥

भवानन्द

⊙

बाणः प्राणिति केशटः स्फुटमसौ जागर्ति योगेश्वरः,
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति ।
येनायं कलिकालपुष्पधनुषो देवस्य शिक्षावशा—

Scanned by CamScanner

योगेश्वर

संस्कृत-साहित्य में सूक्तिमुक्तक-काव्यधारा का रससिद्ध-कवि है योगेश्वर। उसकी रचना में लोक-जीवन के निश्छल और सत्य-कर्म की रसधारा का अविरल प्रवाह सहृदय-हृदय को काव्य तथा जीवन के सामञ्जस्य का आस्वाद जिस प्रकृत-रूप से अनुभूत कराता है, उस रस-धारा का लेश भी आज के जनभाषा (हिन्दी) कवियों की कल्पना में असम्भव प्रतीत होता है। कदाचित् योगेश्वर का कवि मानस लोक की अन्तर्वेशिनी एवं जीवन्त-ललक का समग्रतः साक्षात्कार करने के लिए रमा था और उनके जीवन को वह जीये था–

इदानीमर्घन्ति प्रथमकलमच्छेदमुदिता,
नवीनान्धस्थाली परिमलमुचो हालिकगृहाः।
उदञ्चद्दोर्लीला रणितवलयाभिर्युवतिभिः
गृहोतप्रौक्षिप्तभ्रमितमसृणोद्गीर्णमुसलाः॥

धान की पहली फसल से कृषक प्रसन्नता से भर उठे, वह इस समय मूल्यवान् होने लगे हैं, नये धान चावल से पके भातभरी थाली उनके घरों में सुवास बिखेर रही है, घरों में धान कूटा जा रहा है, इस कारण युवतियों के बाहु मूसल को ऊपर उठाते फिर नीचे गिराते हैं, इस क्रीड़ा-क्रम में हाथ के कंकणों की मधुर-ध्वनि-सहित धान कूटे जाने का स्वर सुनायी पड़ता है। युवतियाँ मूसल को जब उठाती हैं तो नीचे धानराशि पर गिराने से पहले उसे नचा घुमा कर ऊपर से ले आती हैं। अतः कंकणों का बजना स्वाभाविक है–लोक-जीवन का यह सत्य और स्वाभाविक वर्णन अनुपम है।

स्थिति-काल

इस प्रतिभाशाली-मुक्तककार के देश-काल का प्रामाणिक-इतिवृत्त आजतक प्राप्त नहीं है। जिस समृद्ध-लोकजीवन, वन, पर्वत, सरित्

Scanned by CamScanner

पठार, पशु-पक्षी एवं ग्राम-वधूटियों की अकृत्रिम-रूपराशि का अंकन कवि ने संजोया है, वह उसके विन्ध्यमेखला-निवासी होने का संकेत करता है। एक चित्र--

विन्ध्याद्रिमहालिङ्गं स्नपयति पर्जन्यधार्मिकः शुचिभिः।
जलदेन्द्रनीलगण्डूशतोज्झितैः सम्प्रति पयोभिः ॥

कवि वर्षाकाल का दृश्य उपस्थित कर रहा है, उसकी कल्पना अद्भुत है--विन्ध्यपर्वत से जलबिन्दु गिर रहे हैं, कवि उसे शिव के अभिषेक सम्भार का अवसर कहता है--अति धार्मिक वरुण इन्द्रनील के गण्डूस के रूप में फेंकी गई पवित्र जलधाराओं द्वारा विन्ध्य-गिरि रूप शिव का अभिषेक करने लगा है। मालूम होता है, कवि-योगेश्वर विन्ध्यगिरि पर हो रही वर्षा को प्रत्यक्ष देख चुका है। इसी प्रकार किसान के वैभव-उसकी उदारता का अंकन, इस रूप में उपस्थित करता है जैसे कि वह स्वयं रूप धरे हो--

भद्रं ते सदृशं यदध्वगशतैः कीर्तिस्तवोद्‌गीयते,
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिना दानेन कर्णो जितः।
इत्यालोक्य चिरं दृशा कृपणया दूरागतेन स्तुतः,
पान्थे कपलालमुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः ॥

शीतकाल में ग्रामीण जनों के लिए शीत-रक्षा का साधन धान का पुआल हुआ करता है, उसको दूसरे के यहाँ से प्रायः लोग माँग भी लिया करते हैं, ऐसा ही यह ठेठ वर्णन-एक जनकृषक की प्रशंसा करता हुआ एक मुट्ठी पुआल के लिए निवेदन करता है, शतशः पथिक आपका यशगान कर रहे हैं, अपने उदार कृत्यों द्वारा दानी कर्ण तक को जीत चुके हैं, कहते हुए स्तुति करते हुए एक असहाय, दूर से आए एक मुट्ठी भर पुआल के इच्छुक पथिक को देखकर कृषक गर्व का अनुभव करता है। निश्चय पूर्वक तो नहीं परन्तु अनुमानतः कवि को विन्ध्य-प्रदेश की सीमा में स्थित समृद्ध-ग्राम विशेष का रहने-वाला कहना असंगत न होगा। उसकी रचनाओं से प्राप्त अन्तर्साक्ष्य यही संकेत देता है।

निर्भय भारतीय जीवन एवं प्रकृति-सम्पदा को अनाडम्बर भाषा में गुम्फित करनेवाला कवि कब आविर्भूत हुआ यह निश्चय करना

Scanned by CamScanner

सम्भव नहीं है। रचनाओं में किसी नृप अथवा साम्राज्य की कथमपि चर्चा नहीं है अन्यथा हमें कोई सूत्र मिलता। सम्भवतः वनवासी एवं ग्राम-जनों के चरितावगाहन में तुष्ट उसका मन राजसी-चरित अथवा लास-विलास की वह कल्पना ही न कर सका। अस्तु--सुभाषित संग्रहों--सदुक्तिकर्णामृतम् कवीन्द्रवचनसमुच्चय और सुभाषितरत्न-कोष आदि में संकलित उसके मुक्तक एवं संपादकों द्वारा उल्लिखित मत ही हमारे लिए इदमित्थम् दिशा का संकेत है—

भवानन्द और वसुकल्प ने प्रशंसा की है। पहले ने केवल बाण का किन्तु दूसरे ने इनके साथ ही केशट तथा राजशेखर का भी नामोल्लेख किया है। कैटलागस कैटलागारम्, भाग एक पृष्ठ चार सौ इक्यासी कवीन्द्रवचनसमुच्चय की भूमिका पृष्ठ ७७ पर डॉ० थामस ने भाण्डारकर रिपोर्ट १८९७ से उद्धृत किया। यही अंश डा० हरदत्त-शर्मा ने सदुक्तिकर्णामृतम् की भूमिका पृष्ठ ९७ पर उद्धृत करते हुए जोड़ा है कवीन्द्र समुच्चय पृष्ठ ७७-७९ भी देखिए जहाँ अन्य सन्दर्भ-सहित सदुक्तिकर्णामृतम् से उद्धरण और अन्य रचनाओं का उल्लेख है।

डी० डी० कौशाम्बी ने सुभाषितरत्नकोष की भूमिका पृष्ठ ९२ पर लिखा है—छन्द संख्या १६९९ द्वारा अभिनंद अथवा भवानन्द ने प्रशंसा की है, अतः नवीं शताब्दी के पश्चात् स्थिति नहीं है। पाल-सभा का कवि जो ग्राम-जीवनपरक चित्रण के लिए प्रशंसित है उसने स्वयं भवभूति, बाण, कमलायुध, केशट और वाक्पतिराज की प्रशंसा की है, यहाँ नामक्रम तिथि-क्रमानुसार अभिनिविष्ट कहा जा सकता है। वसुकल्प की प्रशस्ति-रचना में यह बाण और केशट के पश्चात् के हैं।

अब हम संदर्भित छन्दों पर विचार कर लें--

बाणः सृष्टिमपूर्ववस्तुविषयामेऽकोत्र निर्व्यूढवान्,
निष्णातः कविकुञ्जरेन्द्रचरिते मार्गे गिरां वा गुरुः।
वेधा विन्ध्यपुलिन्दपामरवधूभूगोलझञ्झानिल--
प्रायेऽर्थे वचनानि पल्लवयितुं जानाति योगेश्वरः॥

बाण जो काव्य-कानन में कविकुंजरेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित मार्गानुगामी, निपुण वाणी के गुरु हैं, अपूर्व विषय-वस्तु को वाणी द्वारा

Scanned by CamScanner

रचा। योगेश्वर उससे भिन्न ऐसे काव्य-मार्ग का विधाता है जहाँ वह विन्ध्य-वन में निवास करनेवाले पुलिन्द-पामरों की वधुओं के विलास कौतुक से पूर्ण वन, नदियों एवं झञ्झावातों का चित्रण करने में अपनी वाणी का विन्यास करना जानता है।

बाणः प्राणिति केशटः स्फुटमसौ जागर्ति योगेश्वरः,
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति।
येनायं कलिकालपुष्पधनुषो देवस्य शिक्षावशा--
दाकल्पं वसुकल्प एवं वचसि प्रागल्भ्यमभ्यस्यति॥

वसुकल्प

कलिकाल--पुष्पधन्वा काम के धनुष की निर्मित-वस्तु पुष्प का बाण प्राण रूप है, केशट उसका विकास, योगेश्वर कलिकाओं में प्रस्फुटित होनेवाला जीवन पराग और राजशेखर की वाणी में उसका सौरभ वासित हो रहा है। यह वसुकल्प, पुष्पधन्वा काम की शिक्षा में निष्णात होने के कारण कल्पान्त की अवधि-पर्यन्त चमत्कृत-वाणी-विलास कर सकता है।

उन्नीतो भवभूतिना प्रतिदिनं बाणे गते यः पुरा,
यश्चीर्णः कमलायुधेन-सुचिरं येनागमत् केशटः।
यः श्रीवाक्पतिराजपादरजसां संपर्कपूतश्चिरं,
दिष्ट्या श्लाघ्यगुणस्य कस्यचिदसौ मार्गः समुन्मीलति॥

योगेश्वर

प्रशंसनीय गुणों से युक्त कवि योगेश्वर का वह काव्य-मार्ग सौभाग्यवश प्रशस्त हो रहा है, जिसका अनुगमन बाण ने किया था, भवभूति ने जिसको अभिसमृद्ध किया, केशट चिरकाल-पर्यन्त जिस पर रमे एवं जो श्रीवाक्पतिराज की चरण-रजों से पवित्र हुआ है।

भवानन्द ने योगेश्वर से पूर्व बाण का नामोल्लेख किया है, वसुकल्प ने क्रमशः बाण, केशट, योगेश्वर तथा राजशेखर को रखा है तथा स्वयं योगेश्वर ने बाण, भवभूति, कमलायुध, केशट, वाक्पति-राज के काव्य मार्गों का अनुगामी अपनी सूक्ति में कहा है। योगेश्वर

Scanned by CamScanner

द्वारा राजशेखर के नाम का उल्लेख न किया जाना, स्पष्ट संकेत है कि उसकी स्थिति राजशेखर से पूर्व रही है। वसुकल्प की सूक्ति में प्राप्त क्रम उसे बाण एवं केशट का परवर्ती संकेतित करता है। योगेश्वर स्वयं को न केवल बाण, केशट अपितु भवभूति कमलायुध तथा वाक्पतिराज का परवर्ती कहता है। स्पष्ट है यह कवि राजशेखर का पूर्ववर्ती भवभूति और वाक्पतिराज-सहित, बाण, कमलायुध तथा केशट का परवर्ती है। बाण सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एवं राजशेखर नवीं शताब्दी के अन्तिम और दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ भाग में किसी समय स्थित थे। अतः योगेश्वर के स्थिति-काल की पूर्व सीमा सातवीं शती का अन्त और आठवीं शती का प्रारम्भ तथा परसीमा नवीं शताब्दी के आरम्भ से आगे नहीं बढ़ सकता। कवि वाक्पतिराज के गुणों से अधिक प्रभावित है, वाक्पति और भवभूति समकालीन, आठवीं शतो के पूर्वार्द्धकाल में रहे। कमलायुध एवं केशट योगेश्वर के ही सूक्ति में बाण के अनन्तर है, अतः इनका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी में कुछ हो सकता है, कारण कि इन दोनों की स्थिति वाक्पतिराज से पूर्व रहो अर्थात् आठवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध का प्रारम्भ-काल माना जा सकता है।

इस विवेचन के आधार पर हम योगेश्वर को आठवीं शताब्दी के अन्त और नवीं के प्रारम्भ काल में किसी समय स्वोकार कर सकते हैं।

'सदुक्तिकर्णामृतम्' में विवेचित योगेश्वर के अतिरिक्त दो अन्य 'धर्म योगेश्वर' और 'करञ्जयोगेश्वर' का भी उल्लेख है। सम्भवतः निवासभूमिपरक नाम हों। सुभाषितरत्नकोष-भूमिका, पृष्ठ वानबे में दो छन्द भी उद्धृत हैं।

काव्य-सौष्ठव

माधुर्य-रससिक्त वाणी के कवि योगेश्वर मात्र सूक्ति-मुक्तकों की ही रचना की या प्रबन्धात्मक काव्यों का भी प्रणयन किया, यह अद्यावधि शोध का विषय है। सुभाषितों में प्राप्त इनके छन्द प्रायः सहृदय पाठक के मन में सर्वलक्षण युक्त काव्याध्ययन-निमित्त ललक उपजाते हैं, अस्तु, मुक्तकों की प्रकृति से प्रतीत होता है कि कवि वन और ग्रामवासियों के जोवन से जन्मतः संपृक्त रहा है। उनके

Scanned by CamScanner

जीवन के सुख-दु:खात्मक-दुर्लभ क्षणों का सत्यांकन करने में कवि विशेष सदाशयीभावधारा में निमग्न होता परिलक्षित होता है। साथ ही गिरि-वन-सर-सरित् और पशु-पक्षियों के स्वाभाविक आनन्द से से पूर्ण क्षणों का साक्षात्कार-सा करता हुआ दृष्टिगत होता है। शीत-काल का ग्राम-चित्रण कवि कितनी स्वाभाविक-रीति में उपस्थित कर रहा है—

उद्वेगं जनयन्ति संचितवृषव्याप्ताजिरोपान्तकाः,
प्रातः शीर्णकुटीरपुंजितलताशिम्बी तुषाराविलाः।
ग्रामा गोमयधूमसंततिपरिक्लिष्टारुणश्मश्रुभि-
र्वृद्धैः कुड्यनिवातलीननिभृतैरभ्यर्थ्यमानातपाः॥

वन-ग्राम का छोर प्रातः कालीन प्रकाश से परिव्याप्त हो चुका है। परन्तु ठंडक सम्पूर्ण ग्राम को आच्छन्न किये है। सवेरा होते ही आँगन में बँधे बैल उससे बाहर निकलने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। कृषकों की जीर्ण-शीर्ण झोपड़ो के ऊपर सेम की लता लहलहा रही है। उसके पत्र-दल ओस कणों से भरे हुए हैं। वृद्ध-जन शीत से बचने के लिए दीवार की ओट में (जहाँ हवा का प्रभाव न पड़ सके) उपली-कण्डे जलाकर (आग) ताप रहे हैं, सतत धुएँ में रहने के कारण दाढ़ी कुछ कुछ लाल होती जा रही है।

कवि ग्राम-जीवन के शोभन-अशोभन क्षणों में खूब जीये हैं, उन रमे क्षणों का काव्य में अभिनिवेश उसका भाव-विलास बना है। वसन्त ग्रीष्म, वर्षा शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के ग्राम जीवन-संश्लिष्ट चित्रणों उसके जीवन-क्षणों का परिमुक्त-आस्वाद रस-रूप हो संचरित होता है। उस रस-संचार से सान्द्र पाठक का रसभोगी मन उस जीवन की निर्भयता से ईर्ष्यालुभावी बन जाता है। सर्वत्र अनाडम्बरपूर्ण भाषा एवं उसके अनुषंगी-भाव कवि के प्रांजल-कवि कर्म का सहज बोध कराते हैं। आज के कवियों को चुनौती देनेवाला एक छन्द—

कामं कूलैर्नदीनामनुगिरिमहिषीयूथनीडोपकण्ठे,
गाहन्ते शष्पराजीरभिनवशलभग्रासलोला बलाकाः।
अन्तर्विन्यस्तवीरुत्तृणमय-पुरुषत्रासविघ्नं कथंचित्,
कापोतं कोद्रवाणां कवलयति कणान् क्षेत्रकोणैकदेशे॥

पर्वत के शान्त तट से सटी बहती हुई नदी के किनारे महिषीदल (भैसों के झुण्ड) की विहार-लीला-भूमि बने हैं, इस कारण देखने-वालों के लिए तट नीले रंग वाले हैं। तट पर अंकुरित नव घास-वनस्पतियों की पाँत-बीच वर्षा कालीन टिड्डो को ग्रास बनाने की इच्छा-संजोये बगुले विचर रहे हैं। किसान ने नदी-तटस्थित खेतों में अभी-अभी कोदो के बीज छींटा है, पक्षियों से रक्षार्थ उसने खेत के मध्य लता-तृणों से बना एक पुरुष (पक्षियों को डराने के लिए) खड़ा कर रखा है। कबूतर उसे देख डरकर खेत के कोने में पड़े बीज के दाने चुग रहे हैं। कवि चमत्कृति से अपने काव्य को दुरूह नहीं बनाना चाहता तथापि कवि-कर्म का यह पाथेय उसका अनुगमन करना नहीं भूल पाता। एक अलंकारिक चित्रण वर्षाकाल में मेघा-च्छन्न-गगन-पटल चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से शून्य होता है, कवि कहता है—आकाश-रूप कड़ाहे में भरा हुआ चन्द्र-ज्योत्स्ना रूपी क्षीर को मेघ-रूप 'महाविडाल, तडिल्लतारूपी अपनी जिह्वा से पी रहा है--

पिबति व्योमकटाहे संसक्तचलत्तडिल्लतारसनः।
मेघमहामार्जारः सम्प्रति चन्द्रातपक्षीरम्॥

भाव-भाषा और अभिव्यंजना, योगेश्वर की कविता को पदे-पदे प्राणवत्ता प्रदान करते हैं।

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

उन्नीतो भवभूतिना प्रतिदिनं बाणे गते यः पुरा,
यश्चीर्णः कमलायुधेन सुचिरं येनागमत्केशटः।
यः श्रीवाक्पतिराजपादरजसां संपर्कपूतश्चिरं,
दिष्ट्या श्लाघ्यगुणस्य कस्यचिदसौ मार्गः समुन्मीलति ॥१

⊙

एवं स्थापय सुभ्रु ! बाहुलतिकामेवं कुरु स्थानकं,
नात्युच्चैर्नभकुञ्चिताग्रचरणं मां पश्य तावत्क्षणम्
गौरीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वानिना,
शम्भोर्वः सुखयन्तु लम्भितलयच्छेदा हतास्तालिकाः ॥२

⊙

मात ! ब्रूहि किमेतदञ्जलिपुटे तातेन गोपायितं,
वत्स ! स्वादुफलं प्रयच्छसि न मे गत्वा गृहाण स्वयम्।
मात्रैवं प्रहिते गुहे विघटयत्याकृष्यसन्ध्याञ्जलिं,
शम्भोर्भग्नसमाधिरुद्धमनसो हास्योद्गमः पातु वः ॥३

⊙

सन्ध्याताण्डवितस्य खण्डपरशोरव्याज्जगन्ति ज्वल-
ल्ललाटाक्षिपुटोद्भवानलशिखालीढेन्दुलेखं शिरः।
भ्रश्यत्कृत्तिचलन्महाहिविगलद्व्योमापगाम्बुस्खल-
त्खन्डेन्दूच्छलदच्छभूतिचटुलभ्राम्यज्जटासन्तति ॥४

⊙

कपाले गम्भीरः कुहरिणि जटासन्धिषु कृशः,
समुत्तानश्चूडाभुजगमणिबन्धव्यतिकरे।
मृदुर्लेखाकोणे रणवशविलोलस्य शशिनः,
पुनीताद्दीर्घं वो हरशिरसि गङ्गाकलकलः ॥५

Scanned by CamScanner

नन्दिन् ! खञ्जनमञ्जुनादमुरजं संगृह्य सञ्जीभव,
कूष्माण्डानाय भस्मभाजनमितो लम्बोदरागम्यताम् ।
स्कन्दं नन्दय मन्दिरोदरगतं देवीति रङ्गाङ्गणे,
शम्भोस्ताण्डवमण्डनैकमनसः सञ्जल्पितं पातु वः ॥६

⊙

चन्द्रालोकय पश्य पन्नगपते वीक्षध्वमेतद्गणाः,
कामारेः स्तनभारमन्थरमुरो लाक्षारुणाङ्घ्रिश्रियः ।
आकर्ण्य त्रिदशापगागिरमिमां सोत्प्रासमाभाषितां,
व्रीडास्मेरनताननो विजयते कान्तार्द्धहारीश्वरः ॥७

⊙

धावति तरुमारोहति कूपं लङ्घयति शकटमुत्क्षिपति ।
तिनवति तिनवति गायति दृष्ट्वा परयोषितं षिङ्गः ॥८

⊙

व्रीहिः स्तम्बकरिः प्रभूतपयसः प्रत्यागता धेनवः,
प्रत्युज्जीवितमिक्षुणा भृशमिति ध्यायन्नपेतान्यधीः ।
सान्द्रोशीरकुटुम्बिनीस्तनभरव्यालुप्तधर्मक्लमो,
देवे नीरमुदारमुज्झति सुखं शेते निशां ग्रामणीः ॥९

⊙

स्वैरं कीकटदारकः परिसरे गुन्द्रालतोपारित-
त्वङ्गच्चर्चरको विरूढलशुनश्यामः परिक्रामति ।
विश्रान्तं मुषलैः स्थितं तितउभिर्विश्रब्धमम्भोघटै-,
र्निर्वाणं ज्वलनैर्मुखैर्विवलितं ग्रामेयिकाणां पुरः ॥१०

⊙

तावद्वाचः प्रयुक्ता मनसि विनिहिता जीविताशापि ताव-
न्निक्षिप्तौ तावदङ्घ्री पथि पथिकजनैर्लक्षितास्तावदाशाः ।
नृत्यद्धाराकदम्बस्तवककवलयिता यावदेते न दृष्टा,
निर्मुक्तव्यालनीलद्युतिनवजलदव्याकुला विन्ध्यपादाः ॥११

⊙

आर्यानङ्गमहाव्रतं विदधता विन्ध्यानिलैः पारणां,
कृत्वा साङ्गमकारि केन मुरलाकूले कठोरं तपः ।
येनास्या रतिखेदमेदुरमृदुश्वासाधिवासस्पृशः,
पीयन्तेऽधरसीधवो विहसितज्योत्स्नोपदंशं रहः ॥१२

नाधन्यैः क्षणदाविराममधुराः किंचिद्विनीता रसैः,
श्रोत्रैर्नापि च किन्नरीकलगलोद्गीतानि पेयानि च ।
श्रूयन्ते मृदुवीतवक्त्रमरुतः पौराणरीतिक्रम–
व्यालोलाङ्गुलिरुद्धमुग्धसुषिरश्रेणीरवा वेणवः ॥१३

⊙

आश्लेषः प्रथमं क्रमेण विजिते कृत्ये धनस्यार्पणं,
केलिद्यूतविधौ पणं प्रियतमे ! कान्तां पुनः पृच्छति ।
अन्तर्गाढविमूढन्मन्थरसस्फारीभवद्गण्डया,
स्वैरं शारिविसारणाय निहितः स्वेदाम्बुगर्भः करः ॥१४

⊙

अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीना–
मुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम् ।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्द–
न्कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि ॥१५

⊙

उपनयति कपोले लोलकर्णप्रवाल–
क्षणमुकुलनिवेशान्दोलनव्यापृतानाम् ।
परिमलितहरिद्रान् संप्रति द्राविडीनां,
नवनखपदतिक्तानातपः स्वेदबिन्दून् ॥१६

⊙

एताः पङ्किलकूलरुढनलदस्तम्बाःक्वणत्कम्बवः,
क्रीडत्कर्कटचक्रवालविलसज्जम्बालतोयाविलाः ।
हृल्लेखं जनयन्त्यनूपसरितामुत्तुण्डगण्डूपदो–
त्कीर्णत्क्लिन्नमृदो नदस्थपुटितप्रान्तास्तटीभूमयः ॥१७

⊙

आसारान्तमृदुप्रवृत्तमरुतो मेघोपलिप्ताम्बरा,
विद्युत्पातमुहूर्तदृष्टककुभः सुप्तेन्दुताराग्रहाः ।
धाराक्लिन्नकदम्बसंभृतसुधामोदोद्वहाः प्रोषितै–,
र्निःसंपातविसारिदर्दुररवा नीताः कथं रात्रयः ॥१८

एते केतकसूचिसौरभजुषः पौरप्रगल्भाङ्गना—,
व्यालोलालकवल्लरीविलुलनव्याजोपभुक्ताननाः ।
किञ्चोन्निद्रकदम्बकुड्मलकुटीधूलीलुठत्षट्पद—,
व्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिणः कर्षन्ति वर्षानिलाः ॥१९

⊙

विन्ध्याद्रिमहालिङ्गं स्नपयति पर्जन्यधार्मिकः शुचिभिः ।
जलदेन्द्रनीलगड्डूषतोज्झितैः संप्रति पयोभिः ॥२०

⊙

पिबति व्योमकटाहे संसक्तचलत्तडिल्लतारसनः ।
मेघमहामार्जारः सम्प्रति चन्द्रातपक्षीरम् ॥२१

⊙

अर्धोद्गतेन कदली मृदुताम्रतलेन गर्भकोषेण ।
पिबति निदाघज्वरिता घनधारां करपुटेनैव ॥२२

⊙

तृणराजपाकसौरभसुगन्धयः परिणताशवो दिवसाः । ?
आद्यकुलोपनिमन्त्रणसुहितद्विजदुःसहोष्माणः ॥२३

⊙

एते संप्रति वैमनस्यमनिशं निःशङ्कमातन्वते,
कान्तारस्थलपद्मिनीपरिमलैरानन्दितेन्दिन्दिराः ।
उन्मीलत्सहकारकाननतटीवाचालपुंस्कोकिल—,
ध्वानाकर्णनकांदिशीकपथिकावस्कन्दिनो वासराः ॥२४

⊙

आरोहत्यवनीरुहः प्रविशति श्वभ्रं नगैः स्पर्धते,
खं व्यालेढि विचेष्टते क्षितितले कुञ्जोदरे लीयते ।
अन्तर्भ्राम्यति कोटरस्य विरमत्यालम्बते वीरुधः,
किं तद्यन्न करोति मारुतवशं यातः कृशानुर्वने ॥२५

⊙

कामं कूले नदीनामनुगिरि महिषीयूथनीलोपकण्ठे,
गाहन्ते शष्पराजीरभिनवशलभग्रासलोला वलाकाः ।
अन्तर्विन्यस्तवीरुत्तृणमयपुरुषत्रासविघ्नं कथंचि—,
त्कापोतं कोद्रवाणां कवलयति कणान्क्षेत्रकोणैकदेशे ॥२६

दात्यूहध्वनिभाञ्जि वेतसशिखासुप्तोरगाणि ध्वन-,
त्कादम्बानि कुरङ्गयूथकलितस्तूपान्युदम्भांसि च ।
तीराण्यद्य पिपीलिकासमुदयावर्जज्जटालोलुप-
व्याप्तान्युन्मदकुक्कुभानि सरितां कुर्वन्ति लोलं मनः ॥२७

⊙

परावृत्ता हंसाः सपदि विगतं कल्मषमपां,
प्रसन्नः शीतांशुः प्रसृतपटवः सूर्यकिरणाः ।
दिशो दीर्घीभूता गगनमसिवर्णं च विपुलं,
नियन्ता विन्ध्याद्रेर्विदितमुदितोऽसौ मुनिवृषा ॥२८

⊙

गर्वायन्ते पलालं प्रति पथिकशतैः पामराः स्तूयमाना,
गोपान्गोर्गर्भिणीनां सुखयति बहलो रात्रिरोमन्थवाष्पः ।
प्रातः पृष्ठावगाढप्रथमरविरुचिर्ग्रामसीमोपशल्ये,
शेते सिद्धार्थपुष्पच्छदनिचितहिमक्लिन्नपक्ष्मा महोक्षः ॥२९

⊙

भद्रं ते सदृशं यदध्वगशतैः कीर्तिस्तवोद्गीयते,
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिना दानेन कर्णो जितः ।
इत्यालोक्य चिरं दृशा कृपणया दूरागतेन स्तुतः,
पान्थेनैकपलालमुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः ॥३०

⊙

इदानीमर्घन्ति प्रथमकलमच्छेदमुदिता,
नवीनान्धस्थालीपरिमलमुचो हालिकगृहाः ।
उदञ्चद्दोर्लीलारणितवलयाभिर्युवतिभि-,
र्गृहीतप्रोत्क्षिप्तभ्रमितमसृणोद्गीर्णमुसलाः ॥३१

⊙

पाकक्षामतिलाः समुत्सुकयितुं शक्ताः कपोतान्भुवः,
श्यामत्वं फलपीड्यमानकुसुमानापद्यते सर्षपान् ।
वायुर्व्यस्तशणस्तुषारकणवानभ्येति कम्पप्रदः,
पान्थैः शुष्कविवादबद्धकलहैः पुण्याग्निरासेव्यते ॥३२

Scanned by CamScanner

उद्वेगं जनयन्ति संचितवृषव्याप्ताजिरोपान्तकाः,
प्रातः शीर्णकुटीरपुञ्जितलताशिम्बीतुषाराविलाः ।
ग्रामा गोमयधूमसंततिपरिक्लिष्टारुणश्मश्रुभि-
र्वृद्धैः कुड्यनिवातलीननिभृतैरभ्यर्थ्यमाना तपाः ॥३३

⊙

निर्भीकभ्रान्तभोगिन्यनलसमशके मांसलध्वांतराशा,-
वासार-क्लिन्नकुड्ये वृषभनिकषणावर्जितद्वारदारौ ।
प्रत्यग्रोदीर्णगर्भे गलति वनगिरिग्रामदेवी गृहान्ते,
संत्रस्ताः शत्रवस्ते कथमपि रजनीं प्रावृषि प्रेरयन्ति ॥३४

⊙

द्वारं खड्गिभिरावृतं बहिरपि प्रस्विन्नगण्डैर्गजै-,
रन्तः कञ्चुकिभिः स्फुरन्मणिधरैरध्यासिता भूमयः ।
आक्रान्तं महिषीभिरेव शयनं त्वद्विद्विषां मन्दिरे,
राजन्सैव चिरन्तनप्रणयिनीशून्येऽपि राज्यस्थितिः ॥३५

⊙

आशाः प्रसादयतु पुष्यतु वा चकोरा-,
न्कामं तनोतु कुमुदेषु मुदं सुधांशुः ।
एकः स एव परमुत्कटराहुदन्त-,
पत्रप्रवेशसमदुःखसुखः कुरङ्गः ॥३६

⊙

आकुब्जीकृतपृष्ठमुन्नतबलद्वक्त्राग्रपुच्छं भयाद्,
अंतर्वेश्मनिवेशितैकनयनं निष्कम्पकर्णद्वयम् ।
लालाकीर्णविदीर्णसृक्कविकसद्दंष्ट्राकरालाननः,
श्वा निःश्वासनिरोधपीवरगलं मार्जारमास्कन्दति ॥३७

⊙

पयसि सरसे स्वच्छे मत्स्याञ्जिघृक्षुरितस्ततो,
वलितनयनं मन्दं-मन्दं पदं निदधद्वकः ।
वियति विधृतैकाङ्घ्रिस्तिर्यग्विवर्तितकन्धरो-,
दलमपि चलत्सप्रत्याशं मुहुर्मुहुरीक्षते ॥३८

Scanned by CamScanner

कासारशोषिणि नवोदयमानमुग्ध—,
सद्वर्तिकानिवहदाहिनि दारुणेऽपि ।
मध्यंदिनोष्णकिरणे प्रतिपन्नसख्य—,
स्मेरं सुखं जयति चित्रचरित्रमब्जम् ॥३९

⊙

तिर्यक्तीक्ष्णविषाणयुग्मचलनव्यानम्रग्रीवाननः,
किंचित्कुञ्चितलोचनः खुरपुटैराचोटयन्भूतलम् ।
निश्वासैरतिजर्जरैर्बुषकणाजालं खले विक्षिप—,
न्नुक्षा गोष्ठतटीषु लब्धविजयो गोवृन्दमास्कन्दति ॥४०

⊙

उच्छामश्मश्रुर्व्यात्तवक्त्रः प्रविततरसनापल्लवालीढसृक्का—,
पिङ्गोग्रभ्रान्तनेत्रः पुलकिततरलोत्तानलांगूलनालः ।
कुत्रापिक्लान्तिगामी क्वचिदतिपिहितः क्वापि तुङ्गाग्रमात्र–,
श्चित्रव्याघ्रोऽयमत्तुं प्रमदवनमृगीतर्णकांस्तूर्णमेति ॥४१

⊙

छन्नोपान्ता निकुञ्जैस्तरुणशुकफलश्यामलैः कीचकानां,
शैलेयप्रस्तराभिः सुभगपरिसराः पीवरीभिः शिलाभिः ।
एते ते रुद्धरेवारयमुखरतया यौवनोद्दामकाम–
व्यापारोत्താललीलाचतुरवनचरीबन्धवो विन्ध्यपादाः ॥४२

⊙

इमास्ता विन्ध्याद्रेः शुकहरितवंशीवनघना,
भुवः क्रीडालोलद्विरदरदनारुग्णतरवः ।
लताकुञ्जे यासामुपनदि रतक्लान्ततरुणी–,
कपोलस्वेदाम्भः परिचयनुदो वान्ति मरुतः ॥४३

⊙

यावद्दुस्थकुटुम्बिनी करतलस्पर्शात्समालोकते,
तत्तत्क्षुद्रकणादिरक्षणधिया घोरं घने वर्षति ।
तावज्जीर्णकुटीरकोटरविशत्सौदामिनीदीपितं,
दृष्ट्वा तूलकजलालमाविलजालकीर्णं मुहुर्मूर्च्छति ॥४४

Scanned by CamScanner

प्रान्ते पङ्क्तिनि पल्लवस्य विलुठन्पोत्री नयत्यातपां-,
स्तृष्णालुर्निभृतं ह्रदेषु महिषः शैवालमन्विष्यति ।
आचीर्णौषधिमूलशीतसुरभिश्वासानिलान्दोलयन्,
प्रक्षीणोष्मणि लीयते वनगिरिश्वभ्रोदरे शल्लकः ॥४५

⊙

असौ बिभ्रत्ताम्रत्विषमुदयशैलस्य शिरसि,
स्खलन् प्रालेयांशुर्यदि भवति मत्तो हलधरः ।
तदानीमेतत्तु प्रतिनवतमालद्युतिहरं,
तमोऽपि व्यालोलं विगलति तदीयं निवसनम् ॥४६

⊙

तैस्तैर्जीवोपहारैरिह कुहरशिलासंश्रयामर्चयित्वा,
देवीं कान्तारदुर्गां रुधिरमुपतरुक्षेत्रपालाय दत्वा ।
तुम्बीवीणाविनोदव्यवहितसरकामल्लि जीर्णे पुराणीं,
हालां मालूरकोषैर्युवतिसहचरा बर्बराः शीलयन्ति ॥४७

⊙

सक्तून् शोचयति संप्लुतान् प्रतिकरोत्याक्रन्दतो बालकान्,
प्रत्युत्सिञ्चति कर्परेण सलिलं शय्यातृणं रक्षति ।
दत्वा मूर्धनि शीर्णशूर्पशकलं जीर्णे गृहे व्याकुला,
किं तद्यन्न करोति दुःस्थगृहिणी देवे भृशं वर्षति ॥४८

⊙

निजगृहमयूरनामभिराहूतानागतेषु वनशिखिषु ।
बालतनयेन रुदता त्वदरिवधू रोदिता दीर्घम् ॥४९

⊙

विश्वस्ता मृगपक्षिणो विवशतां नीताः स्थलीदेवता,
धूमैरन्तरिता स्वभावमलिनैराशा महीतापिता ।
भस्मीकृत्य सपुष्पपल्लवफलांस्तांस्तान्महापादपा-,
न्निर्वृत्तेन दवानलेन विहितं वल्मीकशेषं वनम् ॥५०

⊙

पूर्वःकृतात्मनामसि भग्नानां समिति पश्चिमो द्विषताम् ।
त्वं दक्षिणः प्रणमतां तथापि सर्वोत्तरस्त्वमसि ॥५१

भ्राम्यद्भास्वरमन्दराद्रिशिखर-व्याघट्टनाद्विस्फुरत्-,
केयूराः पुरुहूतकुंजरकरप्राग्भारसंर्द्धिनः । ५१ ।
दैत्येन्द्रप्रमदाकपोलविलसत्पत्रांकुरच्छेदिनो,
दोर्दण्डाः कलिकालकल्मषमुषः कंसद्विषःपान्तु वः ॥५२

⊙

नीताः पुण्याग्निगेहे शिशिररजनयस्तोमसत्रे निदाघं,
शीर्णे कुग्रामदेवीपरिसरसदने वासराः प्रावृषेण्याः ।
दृष्टं व्याभुग्नभीमभृकुटि च वदनं संपदा गर्वितानां,
तत्त्वं तृष्णे !कृतार्थीभव कुरु विरतिं मुञ्च नः साधु यामः ॥५३

⊙

दयालुर्नो बाले न च सुजनगोष्ठीषु रमते,
विलासैर्नारीणां न हि भवति संभावितरसः ।
अनुद्विग्नः कालः कवलयति कृत्स्नं जगदहो,
निसर्गक्रूराणां न खलु करुणार्द्रः परिचयः ॥५४

⊙

अग्रेतप्तजला नितान्तशिशिरा मूले मुहुर्बाहुभि-
र्व्यामथ्योपरतप्रियेषु पथिकैर्मार्गेषु मध्यंदिने ।
आधाराः प्लुतवालशैवलदलच्छेदाव कीर्णोमयः,
पीयन्ते हलमुक्तमग्नमहिषप्रक्षोभपर्याविलाः ॥५५

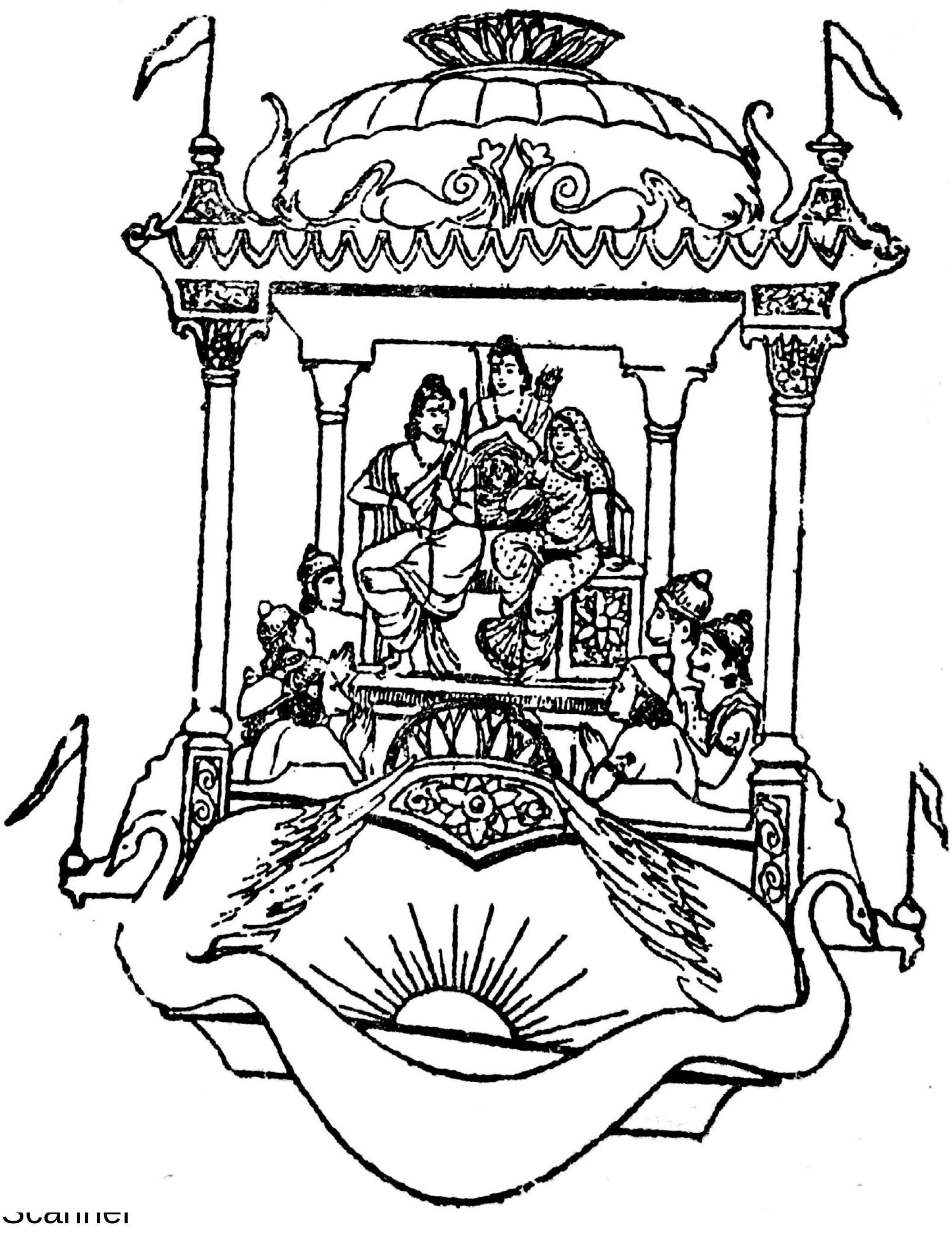
⊙

मृद्भूयिष्ठतया गुरून् परिहरन्नारण्यकान् गोमयान्,
वल्मीकानुपमूहति प्रशिथिलं ज्वालाभिरुद्बल्बजान् ।
वह्निर्नीडकिलिञ्जसञ्चयसमुत्सिक्तश्चरन् कानने,
प्रस्निग्धानिह विष्किराण्डकललानाज्याशया लुम्पति ॥५६

⊙

दूरीभूतशरारि विक्लवबकं संक्रान्तकारण्डवं,
वलाम्यत्कङ्कमचक्रवाकममिलन्मद्गु प्रयातप्लवम् ।
क्लिष्टक्रौञ्चमधार्तराष्ट्रमपतत्कोयष्टि निष्टीटिभं,
सीदत्सारसमप्रसक्तकुररं कालेन जातं सरः ॥५७

व्यपेतव्याहारं गतविविधशिल्पव्यतिकरं,
करस्पर्शारम्भप्रगलितदुकूलान्तशयनम् ।
मुहुर्बद्धोत्कम्पं दिशि दिशि मुहुःप्रेषितदृशोर्,
अहल्यासुत्राम्णोः क्षणिकमिव तत्संगतमभूत् ॥५८



Scanned by CamScanner

विज्जका

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ।।

राजशेखर

⊙

धन्याऽसि या कथयसि प्रिय-सङ्गमेऽपि,
नर्मोक्ति-चाटुक-शतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण,
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ।।

अभिधावृत्तिमातृका

Scanned by CamScanner

विज्जका

संस्कार अथवा ज्ञान मानव में सहज अभिनिविष्ट रहता है। क्योंकि यह अन्तर्निहित–आत्मा की वस्तु है। यहाँ स्त्री-पुरुष का कोई विभेद नहीं। राजशेखर ने भी लिखा है––'पुरुषवद्योषितोऽपि कविर्भवेयुः। संस्कारो ह्यात्मनि समवैति, न स्त्रैणं पौरुषं वा विभाग-मपेक्षतो श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राजपुत्र्यो महामात्य-दुहितरो गणिकाः कौतुकि–भार्यश्चि शास्त्र–प्रहत-बुद्धयः कवयश्च' (काव्यमीमांसा) ऐसी ही शास्त्र-सम्मत-बुद्धि की कवयित्री है विज्जका। इसका उल्लेख 'कवीन्द्र वचनसमुच्चय' (पृष्ठ १०४) में पोटर्सन ने 'सुभाषितावली' / पृष्ठ ११६) में, ज़ेड० डी० एम० जी० (भाग २८। पृष्ठ ८५) में आउफरेष्ट ने किया है। कैटलागस् कैटलागोरम् (भाग १ / पृष्ठ ५७१) में एवं भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १८९७ की रिपोर्ट में यह सूक्ति-कवयित्री चर्चित है। कवि राजशेखर ने इसे सरस्वती का अवतार कहा है––

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्लासरस्वती ॥

सरस्वतीस्वरूपा (अवतार-रूपा) विज्जका तो नीलकमलदल-के समान श्याम वर्ण की है फिर दण्डी ने सरस्वती को शुक्लावर्णा व्यर्थ कहा है। यह विद्या, विज्जका, विजा, विज्जिका आदि नामों से सुभाषित ग्रन्थों में उद्धृत है। विज्जका को 'कौमुदोमहोत्सव' नाटक की लेखिका भी कहा जाता है। परन्तु यह निर्विवाद नहीं है। अस्तु।

यह स्निग्ध-भावों एवं संवेदन-शील-प्रकृति की कवयित्री है–– मेघ से घिरे आकाश से जल की बूँदे गिर रही हैं। मयूर नाच रहे हैं। मेघ रह-रह कर गरज उठते हैं। तीव्रगति से वायु चल रही है––

Scanned by CamScanner

सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुञ्चन्तु नादं घनाः,
वाता वान्तु कदम्ब-रेणु-शबला नृत्यन्त्वमी बर्हिणः।

बादलों के गर्जन में विद्युत् की दमक और तड़-तड़ ध्वनि से दिशाएँ मुखर हो उठती है। विज्जका की कल्पना देखिए—हे विद्युत् ! तुम तो स्त्री हो, फिर भी, ऐसी अकरुण क्यों हो कि प्रिय से वियुक्त, वियोग-दुःख-सागर में निमग्न वियोगिनियों को देखकर भी चमकना बन्द नहीं करती, क्या यह उचित है ?

मग्नां कान्त-वियोग-दुःख-जलधौ दीनां विलोक्याङ्गनाम्,
विद्युत् प्रस्फुरति त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ॥

स्थिति काल

अन्य सूक्ति-कवियों की ही भाँति विज्जका (विद्या) का भी स्थिति काल इदमित्थम् स्वीकारना कठिन है, क्योंकि इसके रचित न तो किसी काव्यादि का ज्ञान है, न उसके किसी आश्रयदाता का। 'अभिधावृत्तिमातृका' में विज्जका का छन्द--

धन्याऽसि या कथयसि प्रिय-सङ्गमेऽपि,
नर्मोक्ति-चाटुक-शतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण,
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥

--पृष्ठ १२, निर्णयसागरसंस्करण

नीलोत्पलदश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्लासरस्वती ॥

--राजशेखर काव्यमीमांसा

'अभिधावृत्तिमातृका' का लेखक मुकुलभट्ट, भट्टकल्लट काश्मीर नृप अवन्तिवर्मन् के सभाकवि थे। अवन्तिवर्मन् का राज्यकाल ईसवीय सन् ८५५-८८४ रहा। नवीं शती के उत्तरभाग में मुकुलभट्ट स्थित रहे होंगे। उनके द्वारा रचित छन्द राजशेखर ने उद्धृत किया। स्पष्ट है कि विज्जका, दण्डी की समकालीन अथवा पूर्ववर्ती रही होगी, जिसे हम सातवीं शतीं का पूर्व भाग

Scanned by CamScanner

स्वीकार कर सकते हैं। नवीं शताब्दी के मुकुलभट्ट तथा राजशेखर द्वारा छन्द के माध्यम से विज्जका की चर्चा उसे इस कालावधि के पश्चात् स्थिर नहीं कर सकती। अतएव विज्जका का स्थिति-काल सातवीं एवं नवीं शती के मध्य किसी समय स्वीकार करना उचित है।

काव्य-सौष्ठव

विज्जका विषय-वर्णन में बहुमुखी है। उसका काव्यराजस्तुति, विशिष्ट तथा सामान्य-कवि-प्रशंसा, असती-चरित, विरहिणी, ग्राम्या-रमणी, पथिक-कामिनी, (स्त्री) मुख, दृष्टि, वियोगिनी-स्वावस्था प्रोषित-भर्तृका-प्रिय-संवाद, सुरत-केलि, देवाख्यान, चम्पकादि पुष्प, वसन्तादि ऋतु और सूर्योदय के चारु-चित्रण से समृद्ध है--

उन्निद्र–कोकनद–रेणु पिशङ्गिताङ्गा,
गायन्ति मंजु मधुपा गृह – दीर्घिकासु।
एतच्चकास्ति च रवेर्नव – बन्धु – जीव-
पुष्पच्छदाभिमुदयाचल – चुम्बि – बिम्बम्॥

सूर्य की नवीन किरणें उदयाचल को चूमती हुई, नव-विकसित बन्धु-जीव कुसुम की शोभा-सहित प्रभा बिखेर रही हैं, गृह-दीर्घिकाओं (तडागों) में फुल्ल–कमल की रक्त-वर्णा पराग–रज से चित्रित भ्रमर-समूह गुंजन करने लगा है। विज्जका के निसर्ग–चित्रण अत्यन्त ही मनोरम हैं, ऐसे वर्णनों में तरु चित्रण, वर्षादि ऋतु का वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं। वर्षाकालीन–प्रकृति और पथिक–कामिनी के स्वरूप और भाव-अंकन द्रष्टव्य हैं।

मेघैर्व्योमनवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः।
एकां घातयितुं वियोग-विधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्-काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम्॥

प्रथम दो चरणों में वर्षा–काल का चित्र–आकाश जलदाच्छन्न, धरती नवजलबिन्दुओं से सिक्त, बिजली की चमक से दिशाएँ आली-

कित, गगन में जलधाराए, वन-प्रान्तर वन पुष्पों से एवं नदियाँ जल से पूर्ण हो गयी हैं। शेष दो अर्थात् तीसरे और चौथे चरण में एक पथिक-कामिनी की टीस मुखर हो रही है--वर्षा कालीन आकाश मुझ एक वियोगिनी, दीन-असहाया स्त्री को क्लेश पहुँचाने के लिए यह सारा आडम्बर क्यों कर रहे हो ? वर्षाकाल वस्तुतः सरसता से पूर्ण होने के कारण विरहिणियों ही नहीं अपितु सभी वियुक्त सहृदय जनों के लिए कष्टकर होता है। विज्जका ने जहाँ सरस-हृदयों के अन्तस्थ भावों को उद्वेलित करने में सायास सफलता प्राप्त की है, वहीं वह लोक जीवन को निश्छलता, उसकी उदारता को चित्रोपम उपस्थित करने में अतिपटु हैं। एक वृक्ष में आरोपित उदात्त-भाव तथा धान (चावल) कूटने बोनने वाली तरुणी के गीत का आनन्द किस प्रकार छन्दों में समाहित हैं—

सुच्छायं फल-भार-नम्र-शिखरं सर्वातिशान्ति-प्रदं,
त्वामालोक्य सुभूरुहं खलु वयं मार्गं विहायाऽऽगताः ।
अन्तस्ते यदि कोटरोदर-चलद्-व्यालावली-विस्फुरद्,
वक्त्रोद्वान्त-विषानलातिभयदं धन्यस्तदानीं भवान् ॥

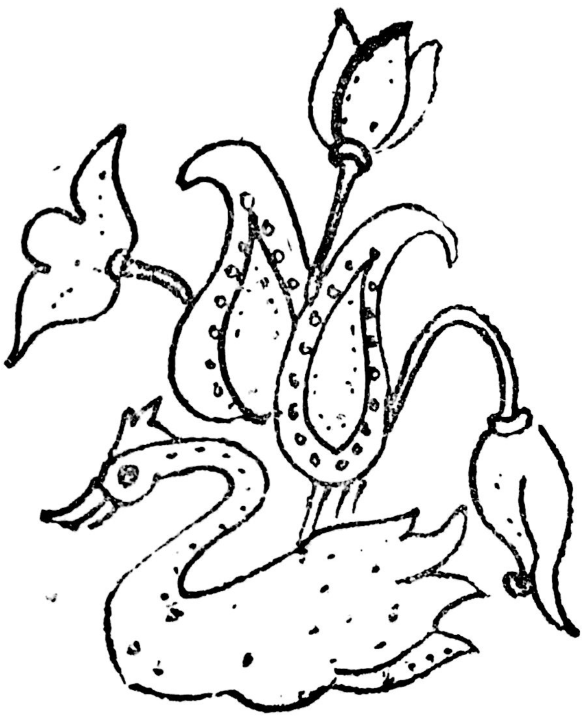
हे फल-भार से नमित शिखरवाले, विटप ! तुमको देखकर हम अपना मार्ग छोड़कर आ गये, तुम सुखद छाया और सभी आर्तजनों के लिए शान्ति-प्रदायक हो। लेकिन यदि तुम्हारे कोटररूपी उदर में, तुम्हारे मुख द्वारा सिहरनरूप लपटों से उत्पन्न विषानल धधक रहा तो तुम्हें धन्यवाद। हम प्रणाम करके चले। अर्थ यह है कि जैसा रूप दूर से दृष्टि-पथ पर आता है, पहुँचने पर विपरीत प्रतीत हुआ तो कोई भी उसके निकट नहीं जा सकता। वस्तुतः यह एक अन्योक्ति है, व्यक्ति विशेष का बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप पृथक्-पृथक् होने पर उसका सान्निध्य कोई नहीं चाहता।

विलास-मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दोः-कन्दली,
परस्पर-परिस्खलद्-वलय-निःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कल-हुंकृति-प्रसभ-कम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्-गमक-सङ्कुलाः कलम-कण्डनी-गीतयः ॥

Scanned by CamScanner

युवती के धान-कूटने का-चित्र है-युवती अपने स्निग्ध हाथों से लीलापूर्वक मुसलधारण किये धान कूट रही है, मुसल के उठने-गिरने से हाथ के कंकण, संघर्षण क्रिया-वश स्वर उत्पन्न करते हैं, साथ ही श्वासोच्छ्वास के कारण हुंकृति एवं उसके कम्पित वक्षस्थल-से उत्पन्न क्रिया, दोनों का संयोग, उसके मधुर गीत का आभास दे रहे हैं।

विज्जका का काव्य सहज-सरसाभिव्यक्ति, स्वाभाविक माधुर्य तथा प्रवाह सामासिक-पद-विन्यास से संवलित है। भाषा पर असाधारण अधिकार, परिणाम भाव भाषा की गतिशीलता के सहचर हैं। काव्य में पर्यायोक्ति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता आक्षेप तथा संकर आदि अलंकारों का भी अभिनिवेश प्राप्त है।



Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

भूपालाः शशि-भास्करान्वयभुवः के नाम नासादिताः,
भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे ।
येनाङ्गं परिमृष्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्याऽऽयतं,
चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना काञ्च्यां करः पातितः ।।१

⊙

यशः पुत्रं देव त्वदसि-लतिकाऽसूत समरे,
समीरुस्तद्धूली-पटल-पट-राशिं विकिरति ।
शिवा गायन्त्युच्चैर्नर्टति च कबन्धावलिरभू—
दरातीनां मोक्षः सपदि भव-बन्ध-व्यतिकरात् ।।२

⊙

नीलोत्पल-दल-श्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्व-शुक्ला सरस्वती ।।३

⊙

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं,
स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ।
वदद्भिरङ्गैः कृत-रोम विक्रियै—
र्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः ।।४

⊙

दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि,
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति ।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं,
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदा नल-ग्रन्थयः ।।५

⊙

Scanned by CamScanner

वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धांस्तदिह कुल-रक्षा समुचिता ।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैक-पतिना,
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सती-लाञ्छनमभूत् ॥६

⊙

सिकतिलतलाः सान्द्रच्छायातटान्त-बिलम्बिनः,
शिशिर-मरुतां नीतावासाः क्वणज्जलरङ्कवः ।
अविनयवती-निर्विच्छेद-स्मर-व्यय-दायिनः,
कथय मुरले केनामी ते कृता निचुल-द्रुमाः ॥७

⊙

मञ्चे रोमाञ्चिताङ्गी रति-मृदित-तनोः कर्कटी वाटिकायां,
कान्तस्याङ्गे प्रमोदादुभय-भुज-परिष्वक्त-कण्ठे निलीना ।
पादेन प्रेङ्खयन्ती मुखरयति मुहुः पामरी फेरवाणां
रात्रावुत्रास-हेतोर्वृति-शिखर-लता-लम्बिनीं कम्बुमालाम् ॥८

⊙

देवेन प्रथमं जितोऽसि शशभृल्लेखाभृताऽनन्तरं,
बुद्धेनोद्धत-बुद्धिना-स्मर ततः कान्तेन पान्थेन मे ।
त्यक्त्वा तान् बत हंसि मामतिकृशां बालामनाथां स्त्रियं,
धिक् त्वां धिक् तव पौरुषं धिगुदयं धिक्कार्मुकं धिक् शरान् ॥९

⊙

मेघैर्व्योमनवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो,
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः
एकां घातयितुं वियोग विधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं,
प्रावृट्-काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥१०

⊙

कोषः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलं,
मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः ।
इत्याकृष्ट-शिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदप्यद्भुतं,
यत् पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे त्वदीयं मुखम् ॥११

Scanned by CamScanner

जनयति जन-नाथ दृष्टिरेषा,
तव नव-नील-सरोरुहाभिरामा ।
प्रणयिषु सुसमाश्रितेषु लक्ष्मी-,
मरिषु च भङ्गमनङ्गमङ्गनासु ॥१२

⊙

गते प्रेमाबन्धे हृदय-बहुमानेऽपि गलिते,
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः
तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रिय-सखि गतांस्तांश्च दिवसान्,
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥१३

⊙

नार्याः सा रति-शून्यता नयनयोर्यद्दृष्टिपाते स्थितः,
कामी प्राप्त-रतार्थ एव न भवत्यालिङ्गितुं वाञ्छति ।
आश्लेषादपि यापरं मृगयते धिक् तामयोग्यां स्त्रियं,
श्रोणी-गोचरमागतो रति-फलं प्राप्नोति तिर्यङ् न किम् ॥१४

⊙

विज्ञप्तिरेषा मम जीवबन्धो,
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः ।
संप्रत्ययोग्य-स्थितरेष देशः,
करा हिमांशोरपि तापयन्ति ॥१५

⊙

धन्यासि या कथयसि प्रिय-सङ्गमेऽपि,
नर्मोक्ति-चाटुक-शतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण,
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥१६

⊙

उन्नमय्य स कचग्रहमास्यं,
चुम्बति प्रियतमे हठ-वृत्त्या ।
हुं ममेति वदनान्तर-लीनं,
जल्पितं जयति मानवतीनाम् ॥१७

Scanned by CamScanner

माद्यद्–दिग्गज-दान-लिप्त-करट–प्रक्षालन-क्षोभिता,
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टं भाग्य-विपर्ययेण सरसः कल्पान्तर-स्थायिन-,
स्तस्याप्येक-बक-प्रचार-कलुषं कालेन जातं जलम् ॥१८

⊙

प्रिय सखि विपद्दण्ड-प्रान्त-प्रपात-परम्परा-
परिचय-चले चिन्ता-चक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-कुलालवद्.
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र करिष्यति ॥१९

⊙

विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपदि महतां धैर्य–भ्रंशं यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जड-विधे ! कल्पापाय–व्यपेत-निज-क्रमाः,
कुल-शिखरिणः क्षुद्रा नैते न वा जल-राशयः ॥२०

⊙

विलास-मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दोः-कन्दली, ।
परस्पर-परिस्खलद्-वलयनिःस्वनोद्‌बन्धुराः ।
लसन्ति कल-हुंकृति-प्रसभ-कम्पितोरःस्थल–,
त्रुटद्–गमक-सङ्कुलाः कलम-कण्डनी-गीतयः ॥२१

⊙

केनापि चम्पक-तरोर्बत रोपितोऽसि,
कुग्राम-पामर-जनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढ-नव-शाक-विवृद्ध-लोभाद्,
भो भग्न-वाट-घटनोचित-पल्लवोऽसि ॥२२

⊙

सुच्छायं फल-भार-नम्र-शिखरं सर्वातिशान्तिप्रदम्,
त्वामालोक्य सु भूरुहं खलु वयं मार्गं विहायाऽऽगताः ।
अन्तस्ते यदि कोटरोदर चलद्व्यालावली विस्फुरद्,
वक्त्रोद्वान्तविषानलातिभयदं धन्यस्तदानीं भवान् ॥२३

Scanned by CamScanner

उन्निद्र-कोकनद-रेणु पिशाङ्गिताङ्गा,
गायति मञ्जु मधुपा गृहदीर्घिकासु ।
एतच्चकास्ति च रवेर्नव-बन्धु-जीव–
पुष्पच्छदाभमुदयाचल-चुम्बि-बिम्बम् ॥२४

⊙

सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुञ्चन्तु नादं घना,
वाताः वान्तु कदम्ब-रेणु-शबला नृत्यन्त्वमी बर्हिणः ।
मग्नां कान्त-वियोग-दुःख-जलधौ दीनां विलोक्याङ्गनां,
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ॥२५

⊙

अस्थिरमनेक-रागं-गुण-रहितं नित्यं वक्र-दुष्प्रापम् ।
प्रावृषि सुरेन्द्र-चापं विभाव्यते युवति-चित्तमिव ॥२६

⊙

मलिन-हुतभुग्-धूमश्यामैर्दिशो मलिना घनै–,
रविरल-तृणैः श्यामा भूमिर्नवोद्गत-कन्दलैः ।
सुरत-सुभगो नूनं कालः स एव समागतो,
मरण-शरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः ॥२७



Scanned by CamScanner

भर्तृमेण्ठ

अथ ग्रथयितुं तस्मिन् पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।
लावण्यनिर्याणभिया तदधःस्वर्णभाजनम् ॥

राजतरङ्गिणी। तरङ्ग ३:२६२

⊙

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि–
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥

राजशेखर

Scanned by CamScanner

भर्तृमेण्ठ

न केवल सूक्तिकार अपितु यह भर्तृमेण्ठ 'हयग्रीववध' महाकाव्य-प्रणेता विख्यात महाकवि हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने इस महा-काव्य के छन्द (सप्तम उल्लास में) दोष-विवेचन प्रकरण में उद्‌धृत किया है। भर्तृमेण्ठ हाथीवान थे। राजशेखर ने 'मेण्ठराज' सम्बो-धन किया है। 'मेण्ठ' शब्द का अर्थ 'महावत' संस्कृतकोशों में उल्लि-खित है। 'राजतरङ्गिणी' के अनुसार यह कवि 'हयग्रीववध' महा-काव्य लेकर तत्कालीन कश्मीरनृपति मातृगुप्ताचार्य की सभा में गया एवं उसने काव्य पढ़कर सुनाया था। नृप की ओर से सम्मानित भी हुआ। काव्य की उत्कृष्टता इसी से प्रमाणित है कि काव्य ग्रन्थ को जब कवि समेटकर बांधने लगा तो नरेश ने नीचे स्वर्णथाल रखवाया कि कहीं उच्छरित काव्यरस धरती पर न चू पड़े--

अथ ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात्।
लावण्यनिर्याणभिया तदधः स्वर्णभाजनम्॥

(राजतरङ्गिणी)। तरंग ३ : २६२

राजशेखर ने इस कवि की काव्य-इयत्ता का उद्‌घोष करते हुए कहा--वाल्मीकि रूप में ही पृथ्वी पर भर्तृमेण्ठ उत्पन्न हुए, क्रमशः भवभूति के पश्चात् संप्रति यह राजशेखर स्थित है--

बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

स्थिति-काल

यह कवि कल्हण, राजशेखर के अतिरिक्त काव्यप्रकाशकार मम्मटसहित अनेक कवियों द्वारा अभिप्रशंसित हुआ है--

तत्त्वस्पृशस्ते कवयः पुराणाः श्रीभर्तृमेण्ठप्रमुखाः जयन्ति।
निस्त्रिंशधारासदृशेन येषां वैदर्भमार्गेण गिरः प्रवृत्ताः॥

परिमल कालिदास, नवसहसाङ्कचरित। ५

Scanned by CamScanner

मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धो विधेः ।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशाः ॥
—मङ्खक' श्रीकण्ठचरित

कश्चिद्वालेख्यकरः कवित्वे प्रसिद्धनामा भुवि भर्तृमेण्ठः ।
रसालवेऽपि स्फुरति प्रकामं वर्णेषु यस्योज्ज्वलता तथैव ॥
—सोढ्वल

कविराजशेखर नवीं शती में स्थितिधुरीण रहे, परिमल कालदास दशवीं, ग्यारहवीं शती के कवि हैं, मङ्खक बारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में स्थित थे और कवि सोढ्वल, चित्तराज, नागार्जुन, मुम्मुनिराज एवं वत्सराज के आश्रय में था। तथा १०२६–१०८० ई० में उसने उदयसुन्दरी कथा की रचना की थी। ऐसी स्थिति में भर्तृमेण्ठ का स्थितिकाल नवीं शती से पूर्व आठवीं के उत्तरभाग में मानना संगत होगा। जेड० डी० एम० जी० (भाग ३६। पृष्ठ ३६८) में आउफरेण्ट ने राजतरङ्गिणी के सन्दर्भानुसार मातृगुप्ताचार्य का समकालीन स्वीकार करते हुए इस कवि का समय लगभग ४३० ई० स्वीकारा है, जो अन्य कवियों द्वारा भर्तृमेण्ठ के सन्दर्भित होने से अतिपूर्व प्रतीत होता है।

कवि-रूप

प्रसादगुण संवलिता–शैली, सरसपद–विन्यास, अर्थानुगामी–शब्द-गुम्फन सरल एवं सदय प्रभावक भाव–संयोजन इनकी कविता के वैशिष्ट्र्य हैं। हमें इनके काव्य में विषय–बाहुल्य के साथ-साथ सरस भावों की सृष्टि द्रष्टव्य है। क्लिष्ट भावों से इनका काव्य सर्वथा वंचित है—

न तथा नागरस्त्रीणां विलासाः रमयन्ति नः ।
यथा स्वभावमुग्धानि वृत्तानि ग्राम्ययोषिताम् ॥

इदं हि माहात्म्यविशेषसूचकं वदन्ति चिह्नं महतां मनीषिणः ।
मनो यदेषां सुखदुःखसम्भवे प्रयाति नो हर्षविषादवश्यताम् ॥

नगर की स्त्रियों के हास–विलास हमें उस सीमा तक सुख-संतोष प्रदायक नहीं होते जिस सीमा तक मुग्ध–स्वभाववाली ग्रामीण युवतियों के आचार और व्यवहार अच्छे लगते हैं।

Scanned by CamScanner

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।

महापुरुषों के माहात्म्य–बोधक विशिष्ट पहिचान मनीषीगणों द्वारा वर्णित है—वह, सुख-दुःख दोनों ही स्थिति में हर्ष-विषाद के वशवर्ती न होते हुए दोनों स्थितियों में समान भाववाले रहते हैं।

विपत्ति-काल में धैर्य, अभ्युन्नति की स्थिति में क्षमा, सभा के मध्य बोलने में पटुता, यश में रुचि एवं श्रुति आदि का व्यसन महात्माओं की स्वाभाविक प्रकृति है।

अलंकारशास्त्री भर्तृमेण्ठ को कालिदास की अपेक्षा सशक्त कवि स्वीकार करते हैं। यह पीलवान् थे, इस कारण सुभाषितग्रन्थों में एक ही छन्द कहीं भर्तृमेण्ठ तो अन्यत्र हस्तिपक के नाम से संकलित मिलते है, अभिप्राय यह है कि हस्तिपक इस कवि का अन्य अभिधान है। राजशेखररचित छन्द—

वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम् ।
आविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्धानं कवि-कुञ्जराः ।।

जल्हण ने सूक्तिमुक्तावली में संगृहीत किया है। अन्य सुभाषित-ग्रन्थ इसे हस्तिपक एवं मेण्ठ दोनों नामों से ग्रहण करते हैं। इस सन्दर्भ में एक छन्द—

त्यक्तो विन्ध्यगिरिः पिता, भगवती मातेव रेवा नदी,
ते ते स्नेहनिबन्धबन्धुरधियः तुल्योदया दन्तिनः ।
त्वल्लोभान्ननु हस्तिनि ! स्वयमिदं बन्धाय दत्तं वपुः,
त्वं दूरे ध्रियसे लुठन्ति च शिरः पीठे कठोराङ्कुशाः ।।

मैने पिता विन्ध्यगिरि (वास भूमि) माता-सदृश भगवती रेवा नदी को छोड़ दिया, हस्ति-लाभार्थ जो भी स्नेह बन्धन थे सबको शिथिल कर डाला, तुम्हारे ही लोभ में पड़कर हे हस्तिनि ! अपने देह को भी

बन्धन में झोंक दिया है, तुम्हारे न प्राप्त होने से, पीठ पर जैसे कठोर अंकुश का प्रहार हो रहा हो तथा शिर घूमने लगा है। एक छन्द और--

जनमजितमपीच्छता विजेतुं,
निशितदशार्धशरं धनुर्विमुच्य।
अतिरभसतयोद्यता स्मरेण,
ध्रुवमसियष्टिरिहाङ्गनाभिधाना ॥

इस छन्द में कवि द्वारा नारी से संबन्धित सुन्दर भावनाओं का मनोहारी चित्रण किया गया है।



Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥१

⊙

मधु च विकसितोत्पलावतंसं,
शशिकरपल्लवितं च हर्म्यपृष्ठम् ।
मदनजनितविभ्रमा च रामा,
फलमिदमर्थवतां विभूतयोऽन्याः ॥२

⊙

यदृच्छासिद्धिषु प्रेम गुरुपूजास्वनादरः ।
व्याधिद्वयमिदं लक्ष्म्याः, क्षितौ ख्यातमनौषधम् ॥३

⊙

महद्भिर्गुप्तैरसकृत्परीक्षितं
स्वयं च, बुद्ध्या परिचिन्तितात्यम् ।
करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान्,
स एव लक्ष्म्या यशसश्च भाजनम् ॥४

⊙

महद्भिरोघैस्तमसामभिद्रुतो,
भयेप्यसंमूढमतिः भ्रमन्क्षितौ ।

Scanned by CamScanner

प्रदीपवेषेण गृहे गृहे स्थितो,
विखण्ड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥५

⊙

जनमजितमपीच्छता विजेतुं,
निशितदशार्धशरं धनुर्विमुच्य ।
अतिरभसतयोद्यता स्मरेण,
ध्रुवमसियष्टिरिहाङ्गनाभिधाना ॥६

⊙

इदं हि माहात्म्यविशेषसूचकं,
वदन्ति चिन्हं महतां मनीषिणः ।
मनो यदेषां सुखदुःखसंभवे,
प्रयाति नो हर्षविषादवश्यताम् ॥७

⊙

वीभत्सा विषया, जुगुप्सिततमः कायो, वयोगत्त्वरम्,
प्रायो बन्धुभिरध्वनीव पथिकैर्योगो वियोगावहः ।
हातव्योऽयमसम्भवाय विरसः संसार इत्यादिकन्,
सर्वस्यापि हि वाचि, चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः ॥८

⊙

र्विनिगतं मानदमात्ममन्दिराद्,
भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयाऽपि यम् ।
स - सम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला,
निमीलिताक्षीव भियाऽमरावती ॥९

⊙

आसीद्दैत्यो हयग्रीवः, सुहृद्वेश्मत्सु यस्य ताः ।
प्रथयन्ति बलं बाह्वोः, सितच्छत्रस्मिताः श्रियः ॥१०

⊙

वाचो माधुर्यवर्षिण्यो, नाभयो शिथिलाशुंकाः ।
दृष्टयश्च चलद्भ्रूका मण्डनान्याःभ्रयोषिताम् ॥११

Scanned by CamScanner

तथाप्यकृतकोत्तालहासपल्लविताधरम् ।
मुखं ग्रामविलासिन्याः, सकलं राज्यमर्हति ॥१२

⊙

मधुरेण दृशां मानं, मधुरेण सुगन्धिना ।
सहकारोद्गमेनैव, शब्दशेषं करिष्यति ॥१३

⊙

न तथा नागरस्त्रीणां, विलासा रमयन्ति नः ।
यथा स्वभावमुग्धानि, वृत्तानि ग्राम्ययोषिताम् ॥१४

⊙

यं प्रेक्ष्य चिररूढापि, निवासप्रीतिरुज्झिता ।
मदेनैरावणमुखे, मानेन हृदये हरेः ॥१५

⊙

स्पृष्टास्ता नन्दने शच्याः, केशसम्भोगलालिताः ।
सावज्ञं पारिजातस्य, मञ्जर्यो यस्य सैनिकैः ॥१६

⊙

दानवाधिपते ! भूयो, भुजोऽयं किन्न नीयते ।
सहायतां कृतान्तस्य, क्षयाभिप्रायसिद्धिषु ॥१७

⊙

महासुरसमाजेऽस्मिन्, न चैकोऽप्यस्ति सोऽसुरः ।
यस्य नाशनिनिष्पेषनीराजितमुरःस्थलम् ॥१८

⊙

त्यक्तो विन्ध्यगिरिः पिता, भगवती मातेव रेवा नदी,
ते ते स्नेहनिबन्धबन्धुरधियः तुल्योदयाः दन्तिनः ।
त्वल्लोभान्ननु हस्तिनि ! स्वयमिदं बन्धाय दत्तं वपुः,
त्वं दूरे ध्रियसे लुठन्ति च शिरः पीठे कठोरांकुशाः ॥१९

⊙

घासग्रासं गृहाण त्यज गजकलभ ! प्रेमबन्धं करिण्यां,
पाशग्रन्थिव्रणानामभिमतमधुना देहि पङ्कानुलेपम् ।
दूरीभूतास्तवैते शबरवरवधूविभ्रमोद्भ्रान्तरम्या,
रेवाकूलोपकण्ठद्रुमकुसुमरजो धूसरा विन्ध्यपादाः ॥२०

Scanned by CamScanner

त्रिलोचन

कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न
पार्थविजयं क्षमः ।
तदर्थः शक्यते द्रष्टुं
लोचनद्वयिभिः कथम् ॥

राजशेखर

Scanned by CamScanner

त्रिलोचन

कवि त्रिलोचन सूक्तिरचनाकार ही नहीं वह नाटकलेखक भी था। राजशेखर द्वारा इनका उल्लेख पार्थविजय (नाटक) के लेखक के रूप में किया है। आउफरेष्ट, जेड० एम० जी० भाग २७। पृष्ठ ३२ एवं कैटलागस् कैटलागोरम्, पृष्ठ २३८, पीटर्सन रिपोर्ट भाग २ पृष्ठ ६३, जरनल आफ एशियाटिक सोसायटी, भाग १६, पृष्ठ ६६ तथा भाण्डारकर रिपोर्ट सन् १८९७, पृष्ठ–१८–२९ (कवीन्द्रवचनसमुच्चय) भूमिका–पृष्ठ ४२) इतना ही नहीं "सुभाषितरत्नकोश" की भूमिका में इस सूक्तिकवि को एक बौद्ध तथा लोकेश्वर के प्रति निष्ठावान् बताया गया है। (पृष्ठ ८०)

स्थिति काल

एम० कृष्णमाचारिय ने हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्-रेचर (पृष्ठ ६३९) में--

> **हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।**
> **भवेत्कविकुरङ्गानां चापलं तत्र कारणम् ।।**

पार्थविजय (नाटक) से संकलित श्लोक का उल्लेख शार्ङ्गधर ने अपनी सुभाषित संग्रह शार्ङ्गधरपद्धति में किया है। छन्द त्रिलोचन का है। इस स्थिति में त्रिलोचन इसके पूर्ववर्ती हैं। राजशेखर ने

> **कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न 'पार्थविजयं' क्षमः**
> **तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ।।**

इसे उद्धृत कर त्रिलोचन के प्रति अपनी मित्रता प्रदर्शित की है। हम बाण एवं राजशेखर को आधार मानकर सहज ही सूक्तिकवि त्रिलोचन की स्थिति स्थिर कर सकते हैं। शार्ङ्गधरपद्धति का संकलन १३६३ ई० में किया गया। अतः त्रिलोचन की काल-विषय परिसीमा इससे

पा०—८

Scanned by CamScanner

आगे नहीं हो सकती एवं पूर्वसीमा बाणभट्ट और राजशेखर से पूर्व नहीं हो सकती। बाण का काल सातवीं शती का पूर्वार्द्ध एवं राजशेखर की स्थिति नवीं शती है। अतएव त्रिलोचन की स्थिति सातवी शतो का पूर्वार्द्ध एवं नवीं शती के मध्य किसी समय रही होगी। अर्थात् सातवीं के उत्तरार्द्ध और नवीं शती के पूर्वार्द्ध का कोई भाग त्रिलोचन के लिए समीचीन है।

सूक्तिकवि

त्रिलोचन पूर्णतः फुटकल भावों के कवि हैं। उनकी जिस रचना के कारण कवि राजशेखर ने उनकी प्रशंसा की उस 'पार्थविजय' नामक नाटक की उपलब्धि अद्यावधि नहीं हो सकी है। अतः उसकी काव्य प्रतिभा का एक रूप निर्धारित करना असम्भव है। सुभाषित ग्रन्थों में संकलितछन्द मात्र उसकी वर्णन-विधा-प्रधान कल्पनायुक्त काव्य प्रतिभा प्रकट करते हैं--

हृष्यन्ति चारुचरितैस्सुजनस्य सन्तः,
क्षुद्रत्वमाशु पिशुनादपि संत्यजन्ति।
रत्नं न केवलमलङ्करणाय लोके,
क्रूरग्रहादिशमकं च भवेत्प्रभावैः॥

सत्पुरुष साधुजनों के पुण्य (चारु) चरितों से हर्ष का अनुभव करते हैं, क्षुद्रत्व को गर्हित कहते हैं। लोक में, रत्न एक मात्र भूषण का ही साधन नहीं अथवा वस्तु नहीं अपि तु, प्रभावशात् क्रूर ग्रहों की शान्ति हेतु साधन हो सकते हैं। एक सहृदय-हृदय के लिए रस-सृष्टि-कारक छन्द का आनन्द भी लें--

निर्वाणतां नयसि किं हरिणाक्षि! दीप—
माविर्भवन्नवरतस्त्रपया विलोलाम्।
ज्योत्स्नां वितन्वति सदा तव वक्त्रचन्द्रे,
गौराङ्गि! तर्कय कुतस्तिमिरावकाशः॥

हे हरिणाक्षि! दीप को क्यों बुझा रही हो, यह नवाभिसार जनित लज्जाशीलता एवं कम्पन उत्पन्न करनेवाला है। हे गौरवर्णे! तुम्हारे चन्द्रानन से छिटक रहे ज्योत्स्नाभास के कारण सहज ही अन्धकार के लिए अवसर नहीं देता।

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

हृष्यन्ति-चारुचरितैस्सुजनस्य सन्तः,
क्षुद्रत्वमाशु पिशुनादपि सन्त्यजन्ति ।
रत्नं न केवलमलङ्करणाय लोके,
क्रूरग्रहादिशमकं च भवेत्प्रभावैः ॥१

⊙

उच्चैः स्थानकृतोदयैर्बहुविधैर्ज्योतिर्भिरुद्यत्प्रभैः,
शुक्राद्यैः किममीभिरत्र विततां प्रौढिं दधानैरपि ।
यावल्लोकतमोपहेन भवता लक्ष्मीर्न विस्तार्यते,
तावच्चन्द्र ! कथं प्रयाति परमां वृद्धिं स रत्नाकरः ॥२

⊙

निर्वाणतां नयसि किं हरिणाक्षि ! दीप--
माविर्भवन्नवरतस्त्रपया विलोलाम् ।
ज्योत्स्नां वितन्वति सदा तव वक्त्रचन्द्रे,
गौराङ्गि ! तर्कय कुतस्तिमिरावकाशः ॥३

⊙

हृदि लग्नेन बाणेन, यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां, चापलं तत्र कारणम् ॥४

⊙

तावत्कविविहंगानां, ध्वनिर्लोकेषु शस्यते ।
यावन्नो विशति श्रोत्रे मयूरमधुरध्वनिः ॥५

Scanned by CamScanner

दरोन्मुक्तारक्तस्फुरदधरवीथीक्रमवमन् ,
मयूखान्तर्मूर्च्छद्द्युतिदशनमुद्द्शर्वाशनः ।
सुखं तद्वः शास्तुर्दिशतु शिवमज्ञानरजनी—
व्यवच्छेदोद्गच्छन् महिमघनसंध्यातप इव ॥६

⊙

कन्दर्पादपि सुन्दराकृतिरिरिति प्रौढोत्सलद्रागया,
वृद्धत्वं वरयोषितोऽनयर्दिति त्रासाकुलस्वान्तया ।
मारस्यापि शरैरभेद्यहृर्दिति श्रद्धाभरप्रह्वया,
पायाद्वः स्फुटबाष्पकम्पपुलकं रत्या जिनो वन्दितः ॥७

⊙

कृपावृष्टिस्फीतात्तव हृदयपीयूषसरसः,
प्रवाहो निर्गत्य क्रमतनिमरम्यः करुणया ।
तृषार्तानामीषद्वितततिमधुरान्तः प्रतिगति—
प्रणालीभिः पञ्चाभवर्दिति किमन्यद् भुजकरात् ॥८

⊙

शीतार्तैरिव भग्नशैशिरनिशाभागैरहः स्फायते,
गर्भं बिभ्रति किंशुका इव दिशां तापाय वह्न्यकङ्कुरम् ।
किं च स्वाश्रयसंभृतप्रथिमसुच्छायातपाङ्गेष्वयम्,
लोकः स्तोकरसोऽद्य न क्वचिदपि स्वच्छन्दमानन्दति ॥९

⊙

अयं स कालः शूराणां खिन्नानां यत्र बन्धुषु ।
आपद्गतपरित्राणमपूर्वोऽनुनयक्रमः ॥१०

⊙

एषा बधू भरतराजकुलस्य साध्वी,
दुर्योधनस्य महिषी प्रियसङ्गरस्य ।
विस्मृत्य पाण्डुधृतराष्ट्रपितामहादीन्,
गन्धर्ववीरपशुभिः परिभूयते स्म ॥११

Scanned by CamScanner

चित्तप

वल्मीकप्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजो,
व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः।
भोजश्चित्तपबिल्हणप्रभृतिभिः कर्णोऽपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः ॥

सुभाषितावली

⊙

किं वीणाक्वणितेन किं मधुकरीझङ्कारितेनाऽपि किं
कन्दर्पायुधशिञ्जितेन तरुणीहुङ्कारितेनाऽपि किम्।
श्रीमच्चित्तपसत्कवेर्यदि वचो हेरम्बकुम्भस्थली-
मुक्ताम्भः सुभगं सुधासहचरं कर्णोदरं गाहते ॥

सूक्तिमुक्तावली

Scanned by CamScanner

चित्तप

अन्य सूक्ति कवियों की ही भाँति चित्तप का ऐतिह्य-विषयक ज्ञान हमें सुभाषित ग्रन्थों से प्राप्त होता है। विभिन्न सुभाषितों में संकलित इसके छन्दों से संकेतित है कि यह लोक जीवन की अनुभूति से दूर, राजोचित लास-विलास पूर्णवैभव के विशेषतः निकट रहा। यह भी बिल्हण आदि कवियों की परम्परा में राजाश्रय का प्रशंसक था——

वल्मीकप्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजो,
व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः।
भोजश्चित्तपबिल्हणप्रभृतिभिः कर्णोऽपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः॥

सुभाषितावलिः। पृष्ठ ३०।१८६

इस छन्द का निहितार्थ है कि नृपतिगण की ख्याति उनके विजयाभिमानों से नहीं वरन् कवियों द्वारा किये गये गुण-स्तव से होती रही है। चित्तप धारानृपति भोज के धवलयश की गाथा, उसके स्वरूपवान् होने का प्रभाव वर्णन करता है——

किं वातेन विलङ्घिता न, न, महाभूतार्दिता किं न, न
भ्रान्ता किं न, न, संनिपातलहरीप्रच्छादिता किं न, न।
तत्किं रोदिति, मुह्यति, श्वसिति किं स्मेरं च धत्ते मुखं,
दृष्टः किं कथयाम्यकारणश्रीभोज्यदेवोऽनया॥

किसी नायिका की विषम मनोदशा का चित्रण करता कवि, उसकी उस स्थिति में अन्तर्भूत प्रयोजन-व्याज से भोज देव का रूप वर्णित कर रहा है——क्या अभिलषित का क्षय हो गया, नहीं, क्या भूत-प्रेतादि से आक्रान्त, नहीं, क्या लक्ष्य से भ्रष्ट है, नहीं, तो क्या

Scanned by CamScanner

सन्निपात ज्वर से प्रपीड़ित है, न, ऐसा भी नहीं, तब क्या कारण है जो यह रो रही, निःश्वास छोड़ती मूर्च्छित हो रही और मुख मुसकान से पूर्ण हैं। फिर शंका का समाधान है—अकारण ही (अति रूपवान्) भोजदेव पर इसकी दृष्टि पड़ गयी है।

देश, काल और स्थिति

डी० डी० कौशम्बी के मत में यह सूक्तिकार धाराधीशनृप भोज, साथ ही किसी कलचुरि नरेश का सभाकवि था। एक छन्द में मालवनृप तथा एक में नर्मदा नदी का वर्णन उसने किया है। नृप भोज के सौन्दर्य से किसी राजकुमारी के आकृष्ट होना भी चित्रित है। वर्णित सन्दर्भ संकेत देते हैं। कि यह भोज प्रतिहारों का पूर्ववर्ती था। चित्तप के अधिकतर छन्द राजसभा की प्रशंसा में हैं। प्रतीत होता है कवि प्रशंसात्मक प्रकृति एवं प्रवृत्तिवाला है (सुभाषित-रत्नकोश। पृष्ठ ५६) कैटलागस् कैटलागरम्, इस कवि को चित्तप तथा छित्तप दोनों नामों से उल्लिखित करता है (पृष्ठ १९३)। यह भोज का समसामयिक तथा उसकी सभा में सम्मान प्राप्त कवि था। भोज का स्थिति-काल दशवीं शती है (जेड० डी० एम० जी०। भाग २७ पृष्ठ २९)

कवि-चित्तप

सूक्तिकार चित्तप के अद्यावधि सुभाषितों में संप्राप्त छन्दों का का अध्ययन हमें इस निष्कर्ष पर सहजतः दृढ़ करता है कि यह कवि यद्यपि बहुमुखी चिन्तनधारा एवं सरस कल्पना का धनी था। तथापि उसके काव्य का अधिकांश भाग प्रशंसा-परक है। विषय की तथा रस की दृष्टि से हमें शिव, भैरवादि देव, अश्व, मृगी आदि पशु, हंस, भ्रमर आदि सहित सर, सरोवर और राज-वर्णन सब उसकी रचना में गुम्फित हैं—

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गम्,
मां मुञ्च वागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि शष्पकवलग्रहणानभिज्ञा—
मद्वर्त्मचञ्चलदृशः शिशवो मदीयाः ॥

Scanned by CamScanner

मृगी के वात्सल्य-भाव का सहज चित्रण कितना प्रभावशाली है—अपने शिशुओं का स्मरण करती मृगी बहेलिए से प्रार्थना करती है—हे वागुरिक (बहेलिए) स्तन के अतिरिक्त सभी अंगों का मांस ले लो, कृपा कर मुझे छोड़ दो, क्योंकि अभी मेरे शिशु हरी घास अथवा अन्य तृणादि चरने में असमर्थ हैं और पूर्णत: भोले हैं, वे अपने बाल-चञ्चल नेत्रों से मेरा रास्ता देख रहे होंगे। कवि न केवल मानवीय प्रवृत्ति, प्रकृति तथा मनोभावों के निरीक्षण-परीक्षण में निपुण है अपि तु पशु-पक्षियों तक के प्रकृति-प्रवृत्ति का चित्रण करने में सिद्धहस्त है। हंस का स्वभाव—

> तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं,
> प्रतिपुटकिनीपत्रच्छायं प्रतिक्षणमासितम्।
> नयनसलिलैरुष्णैरुष्णीकृता जलवीचयो,
> जलदमलिनां हंसेनाशां विलोक्य गमिष्यता ॥

हंस, (सरोवर) तट पर आकर, एक के पश्चात् एक कमल पर मुंह लगाया, क्षणभर के लिए कमलदल की छाया में निवास किया जललहरियों के मध्य से, सक्रीड (कमलनाल को) निकाला किन्तु जलदागम-वशात् दिशाओं को मलिन (आच्छादित) देख वह चला गया।

इसी प्रकार पौरुष, कीर्ति, कायगुरुता एवं तज्जनित-गरिमा को भी लक्ष्य करके वर्णन प्रशंसनीय है—

> समाजे सम्राजां सदसि विदुषां धाम्नि धनिनां,
> निकाये नीचानामपि च रमणीनां परिषदि।
> कथंचिद्यत्र स्मः क्षणमतिथयस्तत्र शृणुमः
> स्फुरद्रोमोद्भेदाः सुभग! भवतः पौरुषकथाः ॥

सम्राटों (श्री सम्पन्नों) के समाज, विद्वानों की सभा, धनिक जनों के धाम, नीचजनों के समूह और रमणियों की परिषद (के समूह) में क्षणमात्र के लिए आतिथ्य भाव से अभिभूत आपकी पौरुष कथा रोमाञ्च (विस्मय) उत्पन्न करनेवाली कही जायगी।

> लभ्यन्ते यदि वांञ्छितानि यमुनाभागीरथीसंगमे,
> देव प्रेष्यजनस्तवैव भवतो मर्तव्यतां वाञ्छति।

नन्वेतन्मरणान्न किं नु मरणं कायान्मनो विच्युति–
दीर्घं जीव मनस्त्वदङ्घ्रिकमले कायोऽत्र नः केवलम् ॥

इस छन्द में किसी भक्त की अभिलाषा का कथन है--यदि गंगा यमुना के संगम में प्राण त्याग करने पर सभी वाञ्छित प्राप्त हो सकें तो हे देव। यह जन आप द्वारा वहीं पहुँचाया जाय, वहाँ मरण उचित है, परन्तु इस प्रकार मरण से यदि कथमपि लाभ नहीं है, तो मरण से क्या लाभ ? यह तो देह तथा मन का अधोपतन है। ऐसी स्थिति में अभिलाषा है कि दीर्घ जीवन हो तथा यह मन तुम्हारे पद-कमल की उपासना में निरत रहे और यह शरीर इस लोक में स्थिर रहे।

चित्तप सहज भाषा प्रसादगुणगर्भा शैली के सुविस्तार तथा गम्भीर भाव-संवलित तीखे रचनाकार हैं। यत्र-तत्र उनके शब्द-चयन एवं भावानुबंधन व्यंग्य का भी कारण बना है। पढ़िये-एक व्यंग्यात्मक अतिशयोक्ति--

अभ्युद्धृता वसुमती दलितं रिपूरः
क्रोडीकृता बलवताबलिराजलक्ष्मीः।
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना
जन्मत्रये यदकरोत् पुरुषः पुराणः ॥

पुराण पुरुष (भगवान्) ने धरती के उद्धारार्थ, शत्रु-संहरण-हेतु और बलिराज की श्री बलपूर्वक हस्तगत करने के लिए वराह, नृसिंह वामन रूप में पृथक्-पृथक् अवतार धारण किया (तीन जन्मग्रहण करके तीन काम किया) इन्होंने ये तीनों कार्य (तीन जन्म में नहीं, अपि तु) एक ही जन्म में सम्पादित कर लिया।

एक छन्द और–

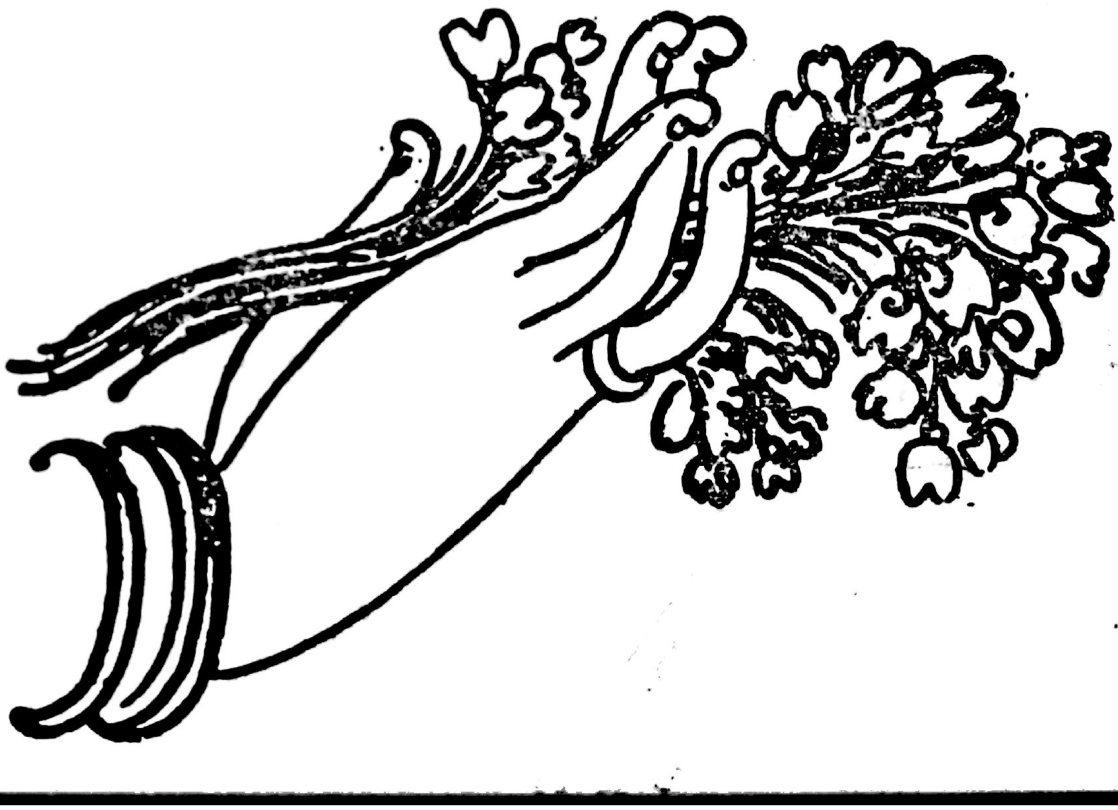
रामः सैन्यसमन्वितः कृतशिलासेतुर्यदम्भोनिधेः,
पारं लङ्घितवान्पुरा तदधुना नाश्चर्यमापादयेत्।
एकाकिन्यपि सेतुबन्धरहितान्सप्तापि वारां निधौ–
हेलाभिस्तव देव ! कीर्तिवनिता यस्मात्समुल्लङ्घति ॥

राम ने शिलासेतु के निर्माण द्वारा पूर्व समय में सेना-सहित पार किया था, आज (आधुनिक काल में) यह कथमपि आश्चर्यकर नहीं,

Scanned by CamScanner

देव तेरो कोर्तिरूपो वनिता सेतु बन्ध-रहित सात-सात समुद्र क्रीडा-पूर्वक लांघती रहती हैं। संकेतार्थ यह है कि समुद्रोल्लंघन के लिए सेतु निर्माण कर राम कीर्ति-भाजन हुए, वह उनकी कीर्ति आज सप्तसिन्धुओं का लंधन कर प्रसार पा रही है।

विषय-बहुलता, कल्पना-पटुता, कान्त-पद-विन्यास, स्निग्ध-भाव के संगमन से परिपूर्ण काव्य-रचना में यह प्रशंसा के पात्र है।



Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

कण्ठच्छायमिषेण कल्परजनीमुत्तंसमन्दाकिनी-
रूपेण प्रलयाब्धिमूर्ध्वनयनव्याजेन कल्पानलम् ।
भूषापन्नगकेलिपानकपटादेकोनपञ्चाशतं,
वातानप्युपसंहरन्नवतु वः कल्पान्तशान्तौ शिवः ॥१

⊙

दिक्कालात्मसमैव यस्य विभुना यस्तत्र विद्योतते,
यत्रामुष्य सुधीभवन्ति किरणा राशे स यासामभूत्।
यस्तत्पित्तमुषःसु योऽस्य विधये यस्तस्य जीवातवे,
वोढा यद्गुणमेष मन्मथरिपोस्ताः पान्तु वो मूर्तयः ॥२

⊙

कल्पान्ते शयितत्रिविक्रममहाकङ्कालदन्ती स्फुर-
च्छेषस्यूतनृसिंहपाणिनखरं प्रोतादिकोलामिषः ।
विश्वैकार्णवतानितान्तमुदितौ तौ मत्स्यकुर्मावुभौ,
कर्षन्धीरवतां गतोऽस्य तु महामोहं महाभैरवः ॥३

⊙

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढ-
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति ।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भ-
सम्भोगसख्यमिव पातु वपुः स्मरारेः ॥४

⊙

कुशलं तस्या जीवति, कुशलं पृष्टासि जीवतीत्युक्तम् ॥
पुनरपि तदेव कथयसि, मृतां नु कथयामि या श्वसिति ॥५

Scanned by CamScanner

स्वामिन्नम्बुजनाथ ! धूर्जटिशिरश्चूड़ामणे चन्द्रमः,
पादौ वां प्रणतोऽस्मि साधु वदतं क्षत्रप्रसूती युवाम् ।
राजा यद्युपसेविताङ्घ्रिरखिलक्ष्मापालचूडाशतै-
रासीदस्ति भविष्यति क्षितितले श्रीभोजदेवोपमः ॥६

⊙

कालिन्दि ! ब्रूहि कुम्भोद्भवजलधिरहं नाम गृह्णासि कस्मा-
च्छत्रोर्मे नर्मदाहं त्वमपि वदसि मे नाम कस्मात्सपत्न्याः ।
मालिन्यं तर्हि कस्मादनुहरसि मिलत्कज्जलैर्मालवीनां,
बाष्पाम्भोभिः किमासां समजनि कुपितः कुन्तलक्षोणिपालः ॥७

⊙

सूर्यो धामवतां न किं न किमयं प्रह्लादकश्चन्द्रमा,
गम्भीरो न किमम्बुधिः क्षितिभृतां रामः स जेता न किं ।
किं त्वेकैकगुणस्तुतौ नहि वयं शक्तास्तदेतद् गुणः-
श्रोतॄणां सुमहोत्सवाय नृपते ! त्वामेकमेव स्तुमः ॥८

⊙

संकल्पेऽङ्कुरितं द्विपत्रितमथ प्रस्थानवेलागमे,
मार्गे पल्लवितं पुरं प्रविशतः शाखाशतैरुद्गतम् ।
प्रातर्भाविनि दर्शने मुकुलितं दृष्टे तु देवे त्वयि,
प्रोत्फुल्लं फलितं च सम्प्रति मनोराज्यद्रुमेणाद्य मे ॥९

⊙

वाल्मीकेः कतमोऽसि कस्त्वमथवा व्यासस्य येनैष भोः !
श्लाघ्यः स्यात्तव भोजभूपतिभुजस्तम्भस्तुतावुद्यमः ।
पङ्गुः पर्वतमारुरुक्षसि विधुस्पर्शं करेणेहसे,
दोर्भ्यां सागरमुत्तितीर्षसि यदि ब्रूमः किमत्रोत्तरम् ॥१०

⊙

अत्युच्चाः परितः स्फुरन्ति गिरयः स्फारास्तथाम्भोधय-
स्तानेतानपि बिभ्रती किमपि न क्लान्तासि तुभ्यं नमः ।
आश्चर्येन मुहुर्मुहुः स्तुतिमिमां प्रस्तौमि यावद्भुव-
स्तावद्बिभ्रदिमां स्मृतस्तव भुजो वाचस्ततो मुद्रिताः ॥११

Scanned by CamScanner

मिथ्या देव ! भुजेन तेऽल्पविभवः कल्पद्रुमः स्पर्धते,
न ह्येनं भुवनत्रयाभयमहासत्री कृपाणेऽर्चति ।
चिन्त्यस्तत्र भवान्सकलविटपी यस्यं तवेकार्णवे,
कल्पान्ते विनिवेश्य विश्वमखिलं छायासु शेते हरिः ॥१२

⊙

द्वीन्द्रं भाति जगत् त्रिधाम गगनं विश्वं चतुर्दैवतं,
पञ्चाम्नायमिदं च वाङ्मयमयं षट्सायको ! मन्मथः ।
सप्तांशः परिवत्सरोऽष्टजलधिस्फारं धरामंडलम्,
दिक्चक्रं नवनायकं क्षितिपतिश्रेष्ठ ! त्वयि भ्राजति ॥१३

⊙

लभ्यन्ते यदि वाञ्छितानि यमुनाभागीरथीसंगमे,
देव प्रेष्यजनस्तवैव भवतो मर्तव्यतां वाञ्छति ।
नन्वेतन्मरणान्न किं नु मरणं कायान्मनोविच्युति-
र्दीर्घं जीव मनस्त्वदङ्घ्रिकमले कायोऽत्र नः केवलम्, ॥१४

⊙

अन्विष्यद्भिरयं चिरात्कथमपि प्रार्थ्येत यद्यर्थिभि-,
र्नाथ त्वं पुनरर्थिनः प्रतिदिनं यत्नात्समन्विष्यसि ।
प्राप्तौ चिन्तितमात्रकं ददसौ चिन्तातिरिक्तप्रदं,
त्वामालोक्य विदीर्यते यदि न तद्ग्रावैव चिन्तामणिः ॥१५

⊙

समाजे सम्राजां सदसि विदुषां धाम्नि धनिनां,
निकाये नीचानामपि च रमणीनां परिषदि ।
कथं चिद्यत्र स्मः क्षणमतिथयस्तत्र शृणुमः,
स्फुरद्रोमोद्भेदाः सुभग ! भवतः पौरुषकथाः ॥१६

⊙

आकर्षन्निव गां वमन्निव खुरान्पश्चार्द्धमुज्झन्निव,
स्वीकुर्वन्निव खं पिबन्निव दिशश्छायाममर्षन्निव ।
साङ्गारप्रकरां स्पृशन्निव धरां वातं समश्नन्निव,
श्रीमन्नाथ ! सवाजिराट् तव कथं मादृग्गिरां गोचरः ॥१७

Scanned by CamScanner

पर्यङ्को राजलक्ष्म्या हरितमणिमयः पौरुषाब्धेस्तरङ्गो,
भग्नप्रत्यर्थिवंशोल्बणविजयकरिस्त्यानदानाम्बुपट्टः ।
संग्रामत्रासताम्यन्नरपतिसुयशोराजहंसाम्बुवाहः,
खड्गः क्ष्मासौ विद्दल्लः समिति विजयते मालवाखण्डलस्य ॥१८

⊙

देव! त्वं मलयाचलोऽसि भवतः श्रीखण्डशाखी भुज-
स्तस्मिन्कालभुजङ्गमो निवसति स्फुर्जत्कृपाणच्छलात् ।
एष स्वाङ्गमनर्गलं रिपुतरुस्कन्धेषु सङ्घट्टय-
न्दीर्घं व्योमविसारिनिर्मलयशो निर्मोकमुन्मुञ्चति ॥१६

⊙

सप्ताम्भोधीन्पिबद्भिर्दिशि दिशि सरितः स्वादयद्भिस्तडागः
व्यूहं गण्डूषयद्भिर्गगनतलगतां जाह्नवीमुल्लिहद्भिः ।
यात्रायां यस्य हेलाचलतुरगचमूशश्ववुद्धूतधूली-
पूरैरेकाब्धिमात्रव्ययजनितमदो लज्जितः कुम्भजन्मा ॥२०

⊙

पद्भ्यामूरुयुगं विभज्य भुजयोर्मध्यं निपीड्योरसा
पार्श्वेषु प्रसभं प्रहृत्य नखरैर्दन्तैर्विलुप्याधरम् ।
संसुप्तानवबोध्य युष्मदहितान्भूयोऽपि भुङ्क्ते वने,
किं कान्ता सुरतैषिणी नहि नहि व्याघ्री करालानना ॥२१

⊙

वर्षासंभृतपीतिमानमनवं स्तब्धाङ्घ्रिहस्तद्वयं,
भेकं मूर्ध्नि निगृह्य कज्जलरजःश्यामं भुजङ्गं स्थितम् ।
मुग्धाव्याधवधूस्तवारिनगरे शून्ये चिरात्संप्रति,
स्वर्णोपस्कृतमुष्टिसायकधिया साकूतमाकर्षति ॥२२

⊙

मातुः खेटमयं ततान पृथुकः कोडेन धात्र्यामसौ,
रागाढ्यस्तरुणः पुरन्दरपुरस्त्रीन्यस्तकण्ठग्रहः ।
ज्यायानप्यभिनत्पितामहपदं नित्याविनीतस्तनू-,
जन्मा ते यशसां गणस्तदुचितव्रीडोऽसि तत्कीर्तने ॥२३

का त्वं कुन्तलमल्लकीर्तिरहह क्वासि स्थिता न क्वचित्,
सख्यस्तास्तव कुत्र कुत्र वद वाग्लक्ष्मीरुच: संप्रति ।
वाग्याता चतुराननस्य वदनं लक्ष्मीमु॑रारेरुर:,
कान्तिर्मण्डलमैन्दवं मम पुनर्नाद्यापि विश्रामभू: ॥२४

⊙

राम: सैन्यसमन्वित: कृतशिलासेतुर्यदम्भोनिधे:,
पारं लङ्घितवान्पुरा तदधुना नाश्चर्यमुत्पादयेत् ।
एकाकिन्यपि सेतुबन्धरहितान्सप्तापि वारां निधी-
न्हेलाभिस्तव देव ! कीर्तिवनिता यस्मात्समुल्लङ्घति ॥२५

⊙

भेकै: कोटरशायिभिमृ॑तमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपै:,
पाठीनैस्तनुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मु॑च्छितम् ।
तस्मिन्नेव सरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं,
येनाकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथै: पय: पीयते ॥२६

⊙

निरानन्द: कौन्दे मधुनि विधुरो बालबकुले,
रसाले सालम्बो लवमपि लवङ्गे न रमते ।
प्रियङ्गौ नासङ्गं रचयति न चूते विचरति,
स्मरंल्लक्ष्मीलीलाकमलमधुपानं मधुकर: ॥२७

⊙

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गं,
मां मुञ्च वागुरिक याहि ! कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि शष्पकवलग्रहणानभिज्ञा,
मद्वर्त्मचञ्चलदृश: शिशवो मदीया: ॥२८

⊙

तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं,
प्रतिपुटकिनीपत्रच्छायं प्रतिक्षणमासितम् ।
नयनसलिलैरुष्णैरुष्णीकृता जलवीचयो,
जलद मलिनां हंसेनाशां विलोक्य गमिष्यता ॥२९

समालम्ब्यान्योन्यं मसृणचरणाः कम्पनजुषो,
न याताः के पारं सति जलधिबन्धे कपिभटाः ।
तटादेकोऽर्वाचश्चकितसुरसिद्धस्थितिसमु-,
त्समुत्प्लुत्य प्रायात्परमपरपारं स हनुमान् ॥३०

⊙

मज्जन्मातङ्गहस्तच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं,
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविलसत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ।
सायं प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयच्छन्नतीरस्थलीकं,
पायाद्वो नर्मदाम्भः करिकरभकराक्लान्तरंहस्तरङ्गम् ॥३१

⊙

लूने पञ्च ततश्चतुष्टयमिति स्रक्सन्निवेशैः शिरः-,
पद्मैरन्यतमावलोकनमितैरुच्छालितैरर्चितः ।
हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि दशमं मूर्धानमध्यासय-,
ञ्शम्भोरुद्धतसाहसैकरसिकः कैर्न स्तुतो रावणः ॥३२

⊙

अन्या साधिगता त्वया क्व युवती यस्याः स मानग्रही,
याते लोचनगोचरं प्रियतमे संप्रत्यपक्रामति ।
अस्माकं पुनरुग्रपूरुषशताश्लेषप्रगल्भात्मना-
मेतादृश्यनभिज्ञपूरुषपरिष्वङ्गे कुतः साध्वसम् ॥३३

⊙

किमस्मान्विद्वेक्षि क्षपितबहुदोषव्यतिकरा-,
न्गुणान्वैधेयानां श्रियमुदयिनीं वीक्ष्य धनिनाम् ।
परिच्छेदः शौचं विनयपरता चेन्द्रियजयो,
विवेकोतः कृत्यं न खलु वयमर्थप्रतिभुवः ॥३४

⊙

संव्यानांशुकपल्लवेषु तरलं वेणीगुणेषु स्थिरं,
मन्दं कञ्चुकसंधिषु स्तनतटोत्संगेषु दीप्तार्चिषम् ।
आलोक्य त्रिपुरावरोधनवधूगर्वस्य धूमध्वजं,
हस्तस्रस्तशरासनो विजयते देवो दयार्द्रेक्षणः ॥३५

Scanned by CamScanner

मातस्तेऽधरखण्डनात्परिभवः कापालिकाद्योऽभवत्,
स ब्रह्मादिषु कथ्यतामिति मुहुर्बाल्याद्गुहे जल्पति ।
गौरी हस्तयुगेन षाण्मुखवचो रोद्धं निरीक्ष्याक्षमां,
वैलक्ष्याच्चतुरास्यनिष्फलपराङ्कृतिश्चिरं पातु वः ॥३६

⊙

किं वातेन विलङ्घिता, न न, महाभूतार्दिता किं न न,
भ्रान्ता किं न न, संनिपातलहरीप्रच्छादिता किं न न ।
तत्किं रोदिति मुह्यति श्वसिति च स्मेरं च धत्ते मुखं,
दृष्टः किं कथयाम्यकारणरिपुः श्रीभोज्यदेवोऽनया ॥३७

⊙

भूत्यै वोऽस्तु कपालदाम जगतां पत्युर्यदीयां लिपिं,
क्वापि क्वापि गणाः पठन्ति पदशो नातिप्रसिद्धाक्षराम् ।
विश्वं स्रक्ष्यति वक्ष्यति क्षितिमपामीशिष्यते शिष्यते,
भागे राशिषु रंस्यतेऽत्स्यति जगन्निर्वेक्ष्यति द्यामिति ॥३८

⊙

कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालबद्धस्फुर–,
च्छेषस्यूतनृसिंहपाणिनखरप्रोताविकोलामिवः ।
विश्वैकार्णवताविशेषमुदितौ तौ मत्स्यकूर्माविभौ,
कर्षन् धीवरतां गतोऽस्य तु सतां मोहं महाभैरवः ॥३९

⊙

यस्याधो गगनं रसातलमुपर्यम्भोधयोऽभ्यन्तरे,
यत्प्राक्पश्चिमदक्षिनोत्तरदिशः कृत्वाऽन्यथा वर्तते ।
यस्य ध्वान्तमनुष्णराशिरुचयो नीलास्तथाऽर्कोपला,
देव ! त्वद्यशसोऽद्भुताद्भुवनतस्य तस्य स्तुतौ के वयम् ॥४०

⊙

कूर्मः पादोऽस्य यष्टिर्भुजगपतिरसौ भाजनं भूतधात्री,
तैलोत्पूराः समुद्राः कनकगिरिरयं वृत्तवर्तीप्ररोहः ।
अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमानः,
शत्रुश्रेणी पतङ्गो ज्वलति रघुपते ! त्वत्प्रतापप्रदीपः ॥४१

Scanned by CamScanner

अन्यः कः क्षारवार्धे त्वमिव नियमितो वानरैर्वा नरैर्वा,
विप्रेणैकेन कोऽन्यः करकुहरपुटी पात्रमात्रे निपीतः ।
जल्पन्नित्थं पृथूर्मिध्वनिभिरवतरत्फेनकूटाट्टहासैः,
स्पर्धां धत्ते पयोधेरधिकमधिपुरं निर्मितो यत्तटाकः ॥४२

⊙

अभ्युद्धृता वसुमती दलितं रिपूरः,
क्रोडीकृता बलवता बलिराजलक्ष्मीः ।
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना,
जन्मत्रये यदकरोत् पुरुषः पुराणः ॥४३

⊙

मौलौ धारय पुण्डरीकममितं तन्वात्मनो विक्रमं,
चक्राङ्कं वह पादयुग्ममवनिं दोष्णा समभ्युद्धर ।
लक्ष्मीं भ्रू निकटे निवेशय भव ज्यायान् दिवौकस्पते–,
विश्वान्तःकरणैकचोर तदपि ज्ञातो हरिः खल्वसि ॥४४

⊙

. . . .

पाथोदेषु तटाभिघातदिवसादारम्य नस्ताम्यति
नूनं मालवराजदिग्जयविधौ तैः पीतमभोनिधे–
र्माद्यद्गन्धगजस्रवन्मदनदीगन्धानुविद्धं पयः ।४५

⊙

हंसज्योत्स्नाकुमुदविशदे सैकतेऽस्मिन्सरय्वा
वादद्यूतं चिरतरमभूत्सिद्धयूनोः कयोश्चित् ।
एको ब्रूते प्रथमनिहतं कैटभं कंसमन्यः,
स त्वं तत्त्वं कथय भवता को हतस्तत्र पूर्वम् ॥४६

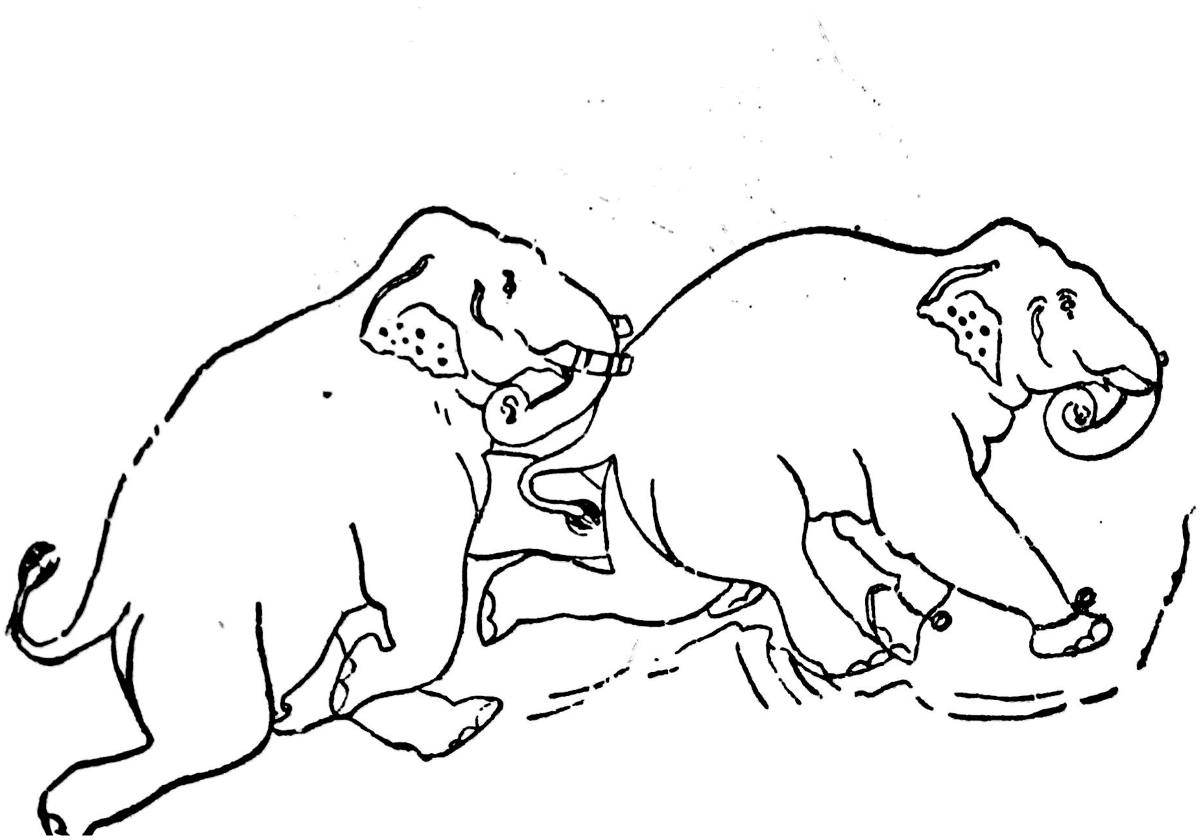
⊙

देव ! त्वद्भुजयोर्बलं न गदितुं वाचा वयं शक्नुमः,
कुर्वाणा हृदयेऽपि तत्पुलकिताः प्रत्यङ्गमेते वयम् ।
शक्ता सैव पुनस्तवासिपतनच्छिन्नद्विषत्कन्धरा–
रन्ध्रोद्भ्रान्तसमीरभैरवरवा युद्धस्थली जल्पितुम् ॥४७

तेषां त्वं निधिरागसामसहना मानोन्नता साप्यतो,
गन्तव्यं भवता न तद्गृहमिति त्वं वार्यसे यासि चेत् ।
गाढं मेखलया बलान्नियमितः कर्णोत्पलेनाहतः,
क्षिप्तः पादतले तदेकशरणो मन्ये चिरं स्थास्यसि ॥४८

⊙

समालम्ब्यान्योन्यं मसृणचरणाः कम्पनजुषो,
न याताः के पारं सरति जलधिबन्धे कपिभटाः ।
तटादेकोऽर्वाचश्चकितसुरसिद्धस्थितिसमु-
त्समुत्प्लुत्य प्रायात्परमपरपारं स हनुमान् ॥४९



Scanned by CamScanner

वसुकल्प

बाणः प्राणिति केशटः, स्फुटःमसौ जागर्ति योगेश्वरः,
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति
येनायं कलिकालपुष्पधनुषां देवस्य शिक्षावशा–
दाकल्पं वसुकल्प एव वचसि प्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥

Scanned by CamScanner

quite contrasting with योगेश्वर

वसुकल्प

वसुकल्प, नागर-जीवन के लास-विलास और सुखभोगी-इतिहास का कवि है। उसके मुक्तकों में राजवैभवीय-विविध-प्रसंगों से युक्त विक्रम, सैन्यबल दिग्विजय, यशोगान, प्रशस्ति और मलय-मारुतत तरुणी-रूप चन्द्र आदि विषय वर्णित है। सम्भवतः यह कवि भौतिक-रस-समृद्धि के जीवन में खूब रमा तथा लगा रहा। कारण, उसकी रचना में लोक जीवन की निश्च्छल-छवि के सन्दर्भ नहीं मिलते। जीवन के सत्य की ललक यदि कहीं रुपायित हुई भी तो वह लास-उल्लास युक्त वाणी को स्तुति के विस्तार में समा-सो गयी। कवि की प्रतिभा का प्रस्फुटन नयो उद्भावना के रूप में सुन्दरतम बन पड़ा है। काम्बोज नृपति का रूप-वैभव सहज ही पाठकों के लिए चमत्कृति उत्पन्न करनेवाला है--

तत्कद्रुमपुष्पसंस्तररिरजस्तत्कामधेनोः पयः,
तं च त्र्यम्बकनेत्रदग्धवपुषः पुष्पायुधस्यानलम्।
पद्मायाः श्वसितानि (तानि) च शरत्कालस्य तच्चस्फुटं,
व्योमादाय विनिर्मितोऽसि विधिना काम्बोज ! तुभ्यं नमः ॥

रसमय-कल्पना के सहारे कवि, नृपति के रूप-देह की निर्मित में कौन-कौन सी दिव्य-वस्तुएँ, विधि ने समायोजित करने के लिए जुटायीं, शब्दांकित करना, चाह रहा है--कल्पवृक्ष के सुमनों से निर्मित-आस्तरण की रज, एवं कामधेनु के दुग्ध (दोनों के मिश्रण) को शंकर के तृतीय नेत्र-ज्वाल में दग्ध कामदेव के देह से उत्पन्न अग्नि पर, शरत्कालीन-शुभ्रलक्ष्मी के श्वसन-रूप वायु द्वारा पका, तथा उससे फूटकर निकले भस्म-कणों से विधि द्वारा निर्मित काम्बोज तुम्हें प्रणाम। वस्तुतः कवि इस प्रकार, नृप को कल्पवृक्ष के समान सब के अभिलाषा पूरक, कामधेनुसदृश उदारहृदय, कामदेवसमान सुन्दर तथा शरत्कालीन लक्ष्मी की भाँति, लक्ष्मी (ऐश्वर्य) का स्वामी एवं भस्म-सदृश उज्जवल यश का भाजन कह रहा है।

Scanned by CamScanner

स्थिति काल

आज से लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व पारम्परिक संस्कृत साहित्य की मुक्तक-काव्यधारा को पंक्ति का यह कवि किस भू-भाग का निवासी और किस शती में अवतरित हुआ सत्यतः अज्ञात है। आन्तरिक-साक्ष्य में जो सूत्र उपलब्ध है उनका परीक्षण हमें दशवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की ओर संकेत करता है--

क

भृङ्गैर्नाविकसंनिभैः परिगतं शुद्धान्तवामभ्रुवां,
कर्णभ्रष्टमवेक्ष्य केतकदलं वापीजले संतरत्-
श्रीमत्साहसमल्लवीर ! भवतो नौ सार्थमन्तःस्मर-
न्नुत्रस्तोऽद्य पुनः करोति सलिलक्रीडां न गौडाधिपः ॥

ख

बाणः प्राणिति केशटः स्फुटमसौ जागर्ति योगेश्वरः
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति ।
येनायं कलिकालपुष्पधनुषो देवस्य शिक्षावशा-
दाकल्पं वसुकल्प एव वचसि प्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥

ग

कर्षद्भिः सिचयाञ्चलानतिरसात् कुर्वद्भिरालिङ्गनं,
गृह्णानैः कचमालिखद्भिरधरं विद्यावयद्भिः कुचौ ।
प्रत्यक्षेऽपि कलिङ्गमण्डलपतेरन्तः पुराणामहो,
धिक्कष्टं विटपैर्विटैरिव वने किं नाम नाचेष्टितम् ॥

'क' संख्यक मुक्तक में कवि साहसमल्ल की प्रशंसा करता है जिसने गौडाधिप को इस सीमा तक संत्रस्त कर दिया कि वह सुन्दरियों के संग सलिलक्रीडा करना भी भूल सा गया।

'ख' मे वह अपने पूर्ववर्ती कवियों के नामोल्लेख क्रमानुसार करता है-बाण, केशट, योगेश्वर, राजशेखर के पश्चात् स्वयं को रखता है।

'ग' मे किसी कलिंग-नरेश (कलिङ्गमण्डलपतेरन्तः) के पराभव का कथन करता है, कलिंगाधिप के रहते हुए सुन्दरियों से आलिगन, केशाकर्षण अधरपानादि क्रिया कलाप होते रहे।

Scanned by CamScanner

'ख' संख्यक मुक्तक में कवि द्वारा परिगणित (बाण-राजशेखरादि) कवियों की सातवीं शती-पूर्वार्द्ध में दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्थिति रही। इस प्रकार वसुकल्प का आविर्भाव राजशेखर के अनन्तर (गणनाक्रम में यह अन्तिम है) अर्थात् दशवीं शती-पूर्वार्द्ध भाग में मान जा सकता है। डॉ० हरदत्त शर्मा (सदु०-भूमिका। पृष्ठ ११०) डॉ० टॉमस (कवि व० समु०-भूमिका। पृष्ठ १०१) दोनों ने आउफरेष्ट (कै० कै०-भाग-१। पृष्ठ ५५७ एवं जेड० डी० एम० जी०-भाग ३६। पृष्ठ ५४५) का कथन, वसुकल्प ने बाण केशट, योगेश्वर, राजशेखर (कवियों) तथा एक नृप 'साहसमल्ल' की चर्चा की है, इतना ही नहीं डीं० डो० कौशाम्बी (मु० र० को०-भूमिका। पृष्ठ ९६) ने वसुकल्प, वसुकल्पदत्त (कल्पदत्त, वासुक, कल्पवसु) एक ही कवि के नामान्तर बताया है (आउफरेष्ट: कैट० कैट०-भाग-१। पृष्ठ ५५७ के आधार पर)

बहिः साक्ष्य

दुर्वारारिवरुथिनी-प्रमथने दाने च विद्याधरैः,
सानन्दं दिवि यस्य मार्गण-गुण-ग्राम-ग्रहो गीयते।
कम्बोजानव्यजेन गौडपतिना तेनेन्दुमौलेरायाम,
प्रासादो निरमायि कुंजरघटावर्षेण भू-भूषणः॥

–दीनाजपुर-स्तम्भ-अभिलेख (जनरल आफ एशियाटिक सोसायटो बंगाल, न्यूसीरीज ७,१९११। पृष्ठ ६१९)

कम्बोज-वंश-तिलकः स्थिरविक्रमश्री–
स्त्वान्त-दान-महिमा-महित-प्रभावः।
क्षमापाल-मौलि-चय-चुम्बित-पादपीठः,
(पृथ्वी) पतिः पृथुरभूदिह राज्यपालः॥

–नयपालदेव का इरदा ताम्रपत्र-लेख (एपिग्राफिका-इण्डिका भाग २२।पृष्ठ १५०-१५९)

इन दोनों अभिलेखांशों में आगत तथ्यों का परोक्षण करते हुए डी० डो० कौशाम्बी ने—'दुर्वारारि श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि 'पाल' उपाधि से विभूषित किसी गौडराजा (कम्बोजवंशीय) ने शिवमन्दिर का निर्माण कराया। जो कुंजरघटावर्ष-सदृश आकर्षक थी। लेख की

लिपि दशवीं शतो की प्रतीत होती है। इससे ८८८ संख्या का भी संकेत मिलता है (शक संवत्) ईसवी सन् ९६६ का बोध होता है, परन्तु उस काल के लिए शक-संवत् न्याय संगत नहीं प्रतीत होता। 'कम्बोज वंश तिलक:' श्लोक से तथा उस (इरदा ताम्रपत्र-लेख) के छठें छन्द से निश्चित संकेत है कि 'राज्यपाल' शब्द किसी पद 'उपाधि के रूप में नहीं अपितु नृप, (राज्यपाल) के रूप में प्रयुक्त हैं, क्योंकि उसे, कम्बोज के वंश-तिलक, 'दान-महिमा-महित-प्रभाव:' 'क्षमापाल-पालचय-चुम्बित-पादपीठ:' से पृथ्वीपति अर्थात् जो कम्बोज-वंश का तिलकस्वरूप दानमहिमा के प्रभाव से मण्डित और जिसके चरण पर राजाओं के शीश नत रहा करते थे। वह (इस लोक में) नृप पृथु-सदृश राज्य का पालनकर्ता हुआ। हाँ यह निश्चय करना असम्भव है कि दीनाजपुर-स्तम्भ-अभिलेख में वर्णित, शिवमन्दिर निर्माण करानेवाले यही हैं अथवा इनके पिता अथवा अन्य पूर्वज। अस्तु, वसुकल्प को पाल सभा में दसवीं शती के मध्यभाग में उपस्थित कहा जा सकता है।

श्रीकौशाम्बी जी ने स्पष्टत: इस कवि को पाल राजाओं का सभा-कवि स्वीकार किया है एवं 'तत्कलपदुम-----------तुभ्यं नम:' छन्द में प्रयुक्त शब्द काम्बोज को नृपति वाची न कि देशवाची उचित समझा है। उनके इस कथन से हम भी पूर्णत: सहमत हैं, छन्द में 'काम्बोज' के लिए आये गुणवाची विशेषण व्यक्ति के ही हो सकते है, स्थान विशेष के कदापि नहीं।

काव्य-व्यक्तित्व

वसुकल्प निश्चयत: राजसभा-पण्डित था, लास-विलास-समृद्ध-रस से परितृप्त उसकी चेतन-वृत्ति एक मात्र उसी में रची-बसी होने के कारण जीवन की सत्य-ललक की ओर कदाचित् ही उन्मुख हो सकी। सभा-वर्णन, सैन्य-व्यूहादि कथन तथा राज-प्रशस्ति-परक कल्पनाएँ अद्वितीय हैं--

> क्रुध्यद्गन्धकरीन्द्रदन्तमुषलप्रेङ्खोलदीप्तानल:,
> ज्वालापातितकुम्भमौक्तिकफलव्युत्पन्नलाजाजल्लौ।
> हस्तेनासिमयूखदर्भलतिका बद्धेव युद्धोत्सवै,
> राज्ञा येन सलीलमुत्कलपतेर्लक्ष्मी: पुनर्भू: कृता॥

कवि युद्धभूमि में मदमत्त गजराज की क्रोधाभिभूतमुद्रा, कुम्भस्रवित मद, हाथ में चमकते तीक्ष्ण-कृपाण के सम्भार से पूर्ण युद्धोत्सव के वर्णन में विवाहोत्सव की सी कल्पना कर बैठा है--मदमाते गजराज की मद-गन्ध विवाहोत्सव के अवसर पर बिखर रही सुगन्ध उनके दांतों के घर्षण से उत्पन्न विवाह-मण्डप में दीप्ताग्नि, गज-मुक्ता, वैवाहिक लाजा (जिसे मण्डप में उपस्थित जन अंजलि में लेकर वर-वधु पर छितरा आशीष देते हैं) हाथ में पड़े कृपाण से निकलती किरणें, वर के हाथ में बंधनेवाला दूर्वादल जिसे लोक कंकण अथवा रक्षा बन्धन कहते हैं। इस प्रकार उस राजा द्वारा युद्धरूप विवाहोत्सव में कौतुकपूर्वक ही उत्कलपति की लक्ष्मी पुनर्विवाहित की गयी। ऐसे रससिक्त-वर्णन से युक्त मुक्तककार वसुकल्प की मधु-कल्पना चन्द्रादि के विविध (प्रशस्तचन्द्रः, प्रौढ़चन्द्र) रूप कथनों में खूब रमी है किन्तु हम उससे हटकर कवि के कतिपय ऐसे मुक्तक उपस्थित करना चाह रहे हैं जहाँ लोकभावों की ललक रूप धरना चाहती है--

उत्तिष्ठ क्षणमात्रमुद्वह सखे! दारिद्र्यभारं मम,
श्रान्तस्तावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन बहुधा गत्वा श्मशानं शवो,
दारिद्र्यान्मरणं वरं सुखमिति घ्यात्वैव तूष्णीं स्थितम्ः ॥

किसी शव को देखकर एक दरिद्र जन का कथन--सखे! उठो, क्षणभर ही के लिए मेरे दारिद्र्य-भार का वहन करो, थका हुआ मैं तब तक तुम्हारे मरण जनित सुख भोग लूं। धन से हीन व्यक्ति के इस प्रकार कहने पर, शव, श्मशान जाकर, दारिद्र्य (दुःख) भोगने की अपेक्षा मरण श्रेष्ठ सुखकर है, सोचते हुए शान्ति से स्थित हो गया।

चातक केवल स्वाती की बूंद ही स्वीकारता है, पूरी वर्षा ऋतु उसके लिए व्यर्थ है। किन्तु कवि भिन्न उद्भावना करता है, अवश्य ही यह कवि की अनोखी कल्पना माननी पड़ेगी--

बीजैरङ्कुरितं लताभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृम्भितं,
कन्दैः कन्दलितं जनैश्च मुदितं धाराधरे वर्षति।

Scanned by CamScanner

भ्रातश्चातक ! पातकं किमपि ते सम्यङ् न जानीमहे
येनास्मिन्न पतन्ति चञ्चुपुटके द्वित्राः पयो बिन्दवः ॥

मुसलाधार वर्षा हो रही है, बीज अंकुरित हो रहे हैं, लताएँ उग आयीं, बल्लरियाँ फैलने लगीं, जड़ों (सूखे वृक्षों) में भी अँखुए फूट पड़े, जन-जन मुदित हैं किन्तु भाई चातक ! ठीक-ठीक तो नहीं जानता, तुमने कोई पाप अवश्य किया है, यही कारण है जो तुम्हारे चञ्चुपुटक (चोंच) में पानी को दो-तीन बूंदे भी नहीं गिर रही हैं। इसका लक्ष्यार्थ है--सुख-समृद्धि का किञ्चिदपि भाग्यहीन को नहीं मिलता अथवा स्वाभिमानी किसी से पाने की अपेक्षा नहीं रखता है।

कवि कम्बोजवंशीय पाल उपाधिधारो किसी नृपति (कदाचित् नयपाल) की सभा में दशवीं शताब्दी के मध्यभाग में रहा। वह किस भूमि-प्रदेश का निवासी था, इसका कोई निश्चित आभास नहीं मिलता, हाँ, सुन्दर प्राग्ज्योतिष भूमि (आसाम प्रदेश) को देखने की उत्कट अभिलाषा एक मुक्तक में अवश्य व्यक्त करता है--

क्रीडत्किन्नरकामिनोविहसितज्योत्स्नावलक्षोकृताः,
कस्तूरीमदर्दुदिनार्द्रसुरभीः प्राग्ज्योतिषीया भुवः।
नीहारस्थलसञ्चरिष्णुचमरीलाङ्गूलसंमार्जनी-
हेलोन्मृष्टनमेरुपुष्परजसो द्रष्टुं समीहामहे ॥

कवि वह प्राग्ज्योतिषीय-भूमि आसाम, देखना चाहता है, जहाँ किन्नरकामिनियों के स्मित धवल-ज्योत्स्ना का आभास देता है, कस्तूरी-मद से सुवासित, ओस कणों से आच्छन्न विचरण स्थल को चमरी (मृगी विशेष) अपनी पूँछ से बुहारती है और जहाँ पुन्नाग-सुमनों का पराग बगरा करता है। स्पष्ट संकेत है--कवि अपने मूलनिवास-भूमि से दूर है।

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

एकः स एव परिपालयताज्जगन्ति,
गौरीगिरीशचरितानुकृतिं दधानः ।
आभाति यो दशनशून्यमुखैकदेश-
देहार्धहारितवधूक इवैकदन्तः ॥१

⊙

कपोलादुड्डीनैर्भयवशविलोलैर्मधुकरै-
र्मदाम्भः संलोभादुपरि पतितुं बद्धपटलैः ।
चलद्बर्हच्छत्रश्रियमिव दधानोऽतिरुचिरा-,
मविघ्नं हेरम्बो जगदघविघातं घटयतु ॥२

⊙

पादाम्भोजसमीपसन्निपतितस्वर्णाथदेहस्फुर-
न्नेत्रस्तोमतया परिस्फुटमिलन्नीलाब्जपूजाविधिः ।
वन्दारुत्रिदशौघरत्नमुकुटोत्सर्पत्प्रभापल्लव-
प्रत्युन्मीलदपूर्वचीवरपटः शाक्यो मुनिः पातु वः ॥३

⊙

शृङ्गारे सूत्रधारः कुसुमशरमुनेराश्रम ब्रह्मचारी,
नारीनामादिदेवस्त्रिभुवनमहितो रागयज्ञे पुरोधाः ।
ज्योत्स्नासत्रं दधानः पुरमथनजटाजूटकोटीशयालु-
र्देवः क्षीरोदजन्मा जयति कुमुदिनीनायकः श्वेतभानुः ॥४

⊙

एतत्तर्कय कैरवक्लमहरे शृङ्गारदीक्षागुरौ,
दिक्कान्तामुकुरे चकोर सुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि ।
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालिस्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः ॥५

Scanned by CamScanner

क्षुण्णान्येव तमांसि किंतु वधतिप्रौढिं न सम्यग्दृशो-
र्वासः संवृतमेव किन्तु जहति प्राणेश्वरं नाबलाः ।
पारावारगतैश्च कोकमिथुनैरानन्दतो गद्गदं,
साकूतं रुतमेव किन्तु सहसा झांकृत्य नोड्डीयते ॥६

⊙

देवः सर्वविवेचनैकनिपुणो देवः कवित्वे गुरु-
र्देवस्तर्कनिशातनिर्मलमतिः श्रीराजचूडामणिः ।
इत्याकर्ण्य विजृम्भमाणपुलकस्फीता विरिञ्चेर्मुखा-
त्सङ्क्ष्वद्य सरस्वती – – – कृच्छ्रेण संमास्यति ॥७
भगवती

⊙

आपूर्वस्माद्विडौजः करिवमथुपयः सिक्तसानोर्गिरीन्द्रा-
दा च प्रत्यक्पयोधेर्वरुणवरवधूनाभिनिष्पीतवारः ।
आमेरोरा च सेतोरवनितलमिलन्मौलिविस्रंसमान-
स्रग्दामानो यदीयं चरणमशरणाः पर्युपासन्नरेन्द्राः ॥८

⊙

देवे निर्भरसाहसैकरसिके निःशङ्कवीरेऽधुना,
निःसीमप्रसरे निरंकुशमतौ ज्ञाते मनाङ् निर्दये ।
निःसंपत्ति निरायुधं निरशनं निर्भूमि निःसैनिकं,
निस्तेजश्च निराश्रयं च निखिलं तद्राजकं वर्तते ॥९

⊙

भृङ्गैर्नाविकसंनिभैः परिगतं शुद्धान्तवामभ्रुवां,
कर्णभ्रष्टमवेक्ष्य केतकदलं वापीजले संतरत् ।
श्रीमत्साहसमल्लवीर ! भवतो नौ सार्थमन्तःस्मर-
न्नुत्त्रस्तोऽद्य पुनः करोति सलिलक्रीडां न गौडाधिपः ॥१०

⊙

त्वत्सैन्यग्लपितस्य पन्नगपतेरच्छिन्नधाराक्रमं,
विस्फारायतशालिनि प्रतिफणं फेनाम्भसि भ्रश्यति ।
देव ! क्ष्मावलयप्रभो ! फणिकुलैः प्रत्यग्रमेकोत्तर-
स्थूलस्तम्भसहस्रधारितमिव क्ष्माचक्रमालोक्यते ॥११

Scanned by CamScanner

शेषं क्लेशयितुं दिशः स्थगयितुं पेष्टुं धरित्रीभृतः,
सिन्धून्धूलिभरेण कर्दमयितुं तैरेव रोद्धुं नभः ।
नासीरे च मुहुर्मुहुश्चलचलेत्यालापकोलाहला-
न्कर्त्तुं नाथ ! वरूथिनीयमवनीं जेतुं पुनस्त्वद्भुजौ ॥१२

⊙

यातां नेहसि यस्य दिग्विजयिनः काम्बोजवाहावली-
विङ्खोल्लेखविसर्पिणि क्षितिरजःपूरे वियच्चुम्बति ।
भानोर्वाजिभिरङ्गकर्षणरसानन्दः समासादितो,
लब्धः किं च नभस्तलामरधुनीपङ्केरुहैरन्वयः ॥१३

⊙

तत्तद्विक्रमदोहदेन विलसद्दोर्दण्डदम्भोलिना,
विद्वेषिव्ययकर्मठेन दिशता निर्वीरमुर्वीतलम् ।
किं ब्रूमश्चतुरब्धिसीमभुवनं राजन्वदातन्वता,
येनामूर्विजिगीषुणा विदधिरे दिक्पालशेषा दिशः ॥१४

⊙

क्षीरोदन्वानलीकः कपटमयतनुस्त्र्यम्बकस्याट्टहासो,
मिथ्यानीहारसंपत्तिभुवनविवरे कृत्रिमा पौर्णमासी ।
संवृत्ताम्भोदवृन्दस्फुरदुरुकरकासारसंदेहदायी,
दायादः कुन्दभासां दिशि विदिशि नभौ यस्य कीर्तिप्रतानः १५॥

⊙

स्वादयन्तु चिरं नाम कोकिलाश्चूतकोरकान् ।
तादृक् परिमलं वेत्ति यदि धन्यो मधुव्रतः ॥१६

⊙

इतस्तावन्नेत्रे वलयमलयाद्रे निधिरपा-
मपारस्त्वत्पादप्रणयपरतन्त्रो निवसति ।
अथात्मानं किं न स्मरसि कुलशैलं किमयशः ।
पताकाः सर्पौघैः प्रतिशिखरिशाखासु वहसि ॥१७

Scanned by CamScanner

बीजैरङ्कुरितं लताभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृम्भितं,
कन्दैः कन्दलितं जनैश्च मुदितं धाराधरे वर्षति ।
भ्रातश्चातक ! पातकं किमपि ते सम्यङ् न जानीमहे,
येनास्मिन्न पतन्ति चञ्चुपुटके द्वित्राः पयोबिन्दवः ॥१८

⊙

अथायतनसंनिधौ भगवतो भवानीपते–,
र्मनोहरमचीखनद् भुवनभूषणं भूपतिः ।
विगाहनकुतूहलोत्तरलपौरसीमन्तिनी–,
पयोधरभरत्रुटद्विकटवीचिमुद्रं सरः ॥१९

⊙

क्रीडत्किंनरकामिनीविहसितज्योत्स्नावलक्षीकृताः,
कस्तूरीमददुर्दिनार्द्रसुरभीः प्राग्ज्योतिषीया भुवः ।
नीहारस्थलसंचरिष्णुचमरीलाङ्गूलसंमार्जनी–
हेलोन्मृष्टनमेरुपुष्परजसो द्रष्टुं समीहामहे ॥२०

⊙

त्रैलोक्यमुदरे विष्णोस्तादृगेव व्यवस्थितम् ।
तादृगन्यादृगप्यस्ति हृदये तु महाकवेः ॥२१

⊙

बाणः प्राणिति केशटः स्फुटमसौ जागर्ति योगेश्वरः,
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति ।
येनायं कलिकालपुष्पधनुषो देवस्य शिक्षावशा–
दाकल्पं वसुकल्प एव वचसि प्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥२२

⊙

उत्तिष्ठ क्षणमात्रमुद्वह सखे ! दारिद्र्यभारं मम,
श्रान्तस्तावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्तो धनवर्जितेन बहुधा गत्वा श्मशानं शवो,
दारिद्र्यान्मरणं वरं सुखमिति ध्यात्वेव तूष्णीं स्थितः ॥२३

Scanned by CamScanner

नम्राः पादनखेषु यस्य दशसु ब्रह्मेशकृष्णास्त्रयस्,
ते देवाः प्रतिबिम्बनात्त्रिदशतां सुव्यक्तमापेदिरे ।
स त्रैलोक्यगुरुः सुदुस्तरभवाकूपारपारं गतो,
मारव्यूहजयप्रगल्भसुभटः शास्ता तव स्तान्मुदे ॥२४

⊙

शास्ता समस्तभुवनं भगवानपायात्,
पायादपास्ततिमिरो मिहिरोपमेयः ।
संसारभित्तिभिदुरो भवकन्दकन्दु–
कन्दर्पदर्पदलनव्यसनी मुनीन्द्रः ॥२५

⊙

शिल्पं त्रीणि जगन्ति यस्य कविता यस्य त्रिवेदी गुरो–
र्यश्चक्रे त्रिपुरव्ययं त्रिपथगा यन्मूर्ध्नि माल्यायते ।
त्रीन् लोकानिव वीक्षितुं वहति यो निस्फूर्जदक्ष्णां त्रयं,
स त्रैगुण्यपरिच्छदो विजयते देवस्त्रिशूलायुधः ॥२६

⊙

त्वं काम्बोज ! विराजसे भुवि भवत्तातो दिवि भ्राजते,
तत्तातस्तु विभूषणः स किमपि ब्रह्मौकसि द्योतते ।
द्विष्माभिस्त्रिभिरेभिरर्पिततनुस्त्वत्कीर्तिरुज्जृम्भिणी,
माणिक्यस्तबकत्रयप्रणयिनीं हारस्य धत्ते श्रियम् ॥२७

⊙

उद्दामद्विरदावलनतिसिनीसौरभ्यसंभावित–,
व्योमानः कलहंसकम्पितगरुत्पालीमरुन्मांसलाः ।
दूरोत्तानतरङ्गलङ्घनकलाजङ्घालगर्वस्पृशः,
कर्पूरद्रवशीकरैरिव दिशो लिम्पन्ति पम्पानिलाः ॥२८

⊙

आन्ध्रीनीरन्ध्रपीनस्तनतटलुठनायासमन्दप्रचाराश्,
चारूनुल्लासयन्तो द्रविडवरवधूहारिधम्मिल्लभारान् ।
जिघ्रन्तः सिंहलीनां मुखकमलमलं केरलीनां कपोलं,
चुम्बन्तो वान्ति मन्दं मलयपरिमला वायवो दाक्षिणात्याः ॥२९

Scanned by CamScanner

मत्पर्यन्तवसुन्धराविजयिने मुक्ताविरत्नं मया,
सर्वं ढौकितमेव तुभ्यमधुना जातोऽस्मि निष्किञ्चनः ।
इत्युल्लासितवीचिबाहुरुदयान्मार्तण्डबिम्बच्छलात्,
प्राप्तस्तप्तकुठारमेष वहते देव ! त्वदग्रेऽम्बुधिः ॥३०

⊙

भीमे प्रस्थानभाजि स्फुरदसिजलदापह्नुतद्वेषिवह्नौ,
गह्णीताह्लाय सर्वे भुवि भुवनभुजश्चामरं वा दिशो वा ।
नैवं चेद्वस्तदानीं प्रधनधृतधनुर्मुक्तकरावर्णविद्धं,
गृध्रा मूर्धानमूर्ध्वं नभसि रभसिनो लाघवेनोद्धरन्ति ॥३१

⊙

कर्षद्भिः सिचयाञ्चलानतिरसात् कुर्वद्भिरालिङ्गनं,
गृह्णानैः कचमालिखद्भिरधरं विद्रावयद्भिः कुचौ ।
प्रत्यक्षेऽपि कलिङ्गमण्डलपतेरन्तःपुराणामहो,
धिक्कष्टं विटपैर्विटैरिव वने किं नाम नाचेष्टितम् ॥३२

⊙

गम्भीरनीरसरसीरपि पङ्कशेषाः, कुर्वन्ति ये दिनकरस्य करास्त एव ।
त्वद्वैरिवीरवनितानयनाम्बुलेशशोषे, कथं प्रतिहता इति मे वितर्कः ॥३३

⊙

तत्कल्पद्रुमपुष्पसंस्तरिरजस्तत्कामधेनोः पयस्,
तं च त्र्यम्बकनेत्रदग्धवपुषः पुष्पायुधस्यानलम् ।
पद्मायाः श्वसितानिलानि च शरत्कालस्य तच्च स्फुटं,
व्योमादाय विनिर्मितोऽसि विधिना काम्बोज ! तुभ्यं नमः ॥३४

⊙

मया तावद् दृष्टो न खलु कलिकन्दर्पनृपतेर्,
गुणैस्तुल्यः कोऽपि क्वचिदपि किमश्रावि भवता ।
इति प्रश्नश्रद्धाकुलितमिव कर्णान्तिकमगात्,
मृगाक्षीणां चक्षुश्चटुलतरतारान्ततरलम् ॥३५

Scanned by CamScanner

क्रुध्यद्गन्धकरीन्द्रदन्तमुषलप्रेङ्खोलदीप्तानल-,
ज्वालापातितकुम्भमौक्तिकफलव्युत्पन्नलाजाञ्जलौ ।
हस्तेनासिमयूखदर्भलतिकाबद्धेन युद्धोत्सवे,
राज्ञा येन सलीलमुत्कलपतेर्लक्ष्मीः पुनर्भूः कृता ॥३६

⊙

एतस्मिन्नवदातकान्तिनि कुचद्वन्द्वे कुरङ्गीदृशः,
संक्रान्तप्रतिबिम्बमैन्दवमिदं द्वेधा विभक्तं वपुः ।
आनन्दोत्तरलस्य पुष्पधनुषस्तत्कालनृत्योत्सव-
प्राप्तिप्रोद्यतकांस्यतालयुगलप्रायं समालोक्यते ॥३७

⊙

वपुः शारङ्गाक्ष्यास्तदविरलरोमाञ्चनिचयं,
त्वयि स्वप्नावाप्ते स्नपयति परः स्वेदविसरः ।
बलाकर्षत्रुट्यद्वलयजकढत्काररनिनदै-,
र्विनिद्रायाः पश्चादनवरतबाष्पाम्बुनिबहाः ॥३८

Scanned by CamScanner

केशट

उन्नीतो भवभूतिना प्रतिदिनं बाणे गते यः पुरा,
यश्चीर्णः कमलायुधेन सुचिरं येनाऽगमकेशटः ।
यः श्रीवाक्पतिराजपादरजसां सम्पर्कपूतश्चिरं,
दिष्ट्या श्लाघ्यगुणस्य कस्यचिदसौ मार्गः समुन्मीलति ॥

—योगेश्वर

This is the way of sublime and
vivid picturesque description in all its
magnificent dimensions.

Scanned by CamScanner

केशट

लगभग बारहवों-तेरहवी शती के पूर्व उन्मुक्तभाव से सूक्ति रचना करनेवाला मुक्तककार अवतीर्ण हुआ, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास-निर्माताओं में केशट अथवा केशटाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ, (सदुक्ति-कर्णामृतम् भूमिका। पृष्ठ ४७)। आउफरेष्ट ने 'कैटलागस् कैट-लागोरम् में इसका नामोल्लेख इस प्रकार किया-कवि सदुक्तिकर्णामृतम्, अभिनन्द एवं वसुकल्प द्वारा चर्चित है (पृष्ठ १२६)। रहस्यमयी-सृष्टि के आलोक में जीवन-दृष्टि को अपनी कविता द्वारा उजागर करनेवाला यह कवि जीवन्त तत्त्वों की खोज, सृष्टि की मूल-विधायिका भूमिरूपी जल में करता प्रतीत होता है। उसने जीवन-सत्य का शाश्वत स्वरूप, सागर, जल, वायु एवं नदियों की छवि में प्रच्छन्न, स्वीकार कर उसके प्रतिबिम्बाभास में प्राण-तत्त्व को पहचानना चाहा है--

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः स्वाभाविको स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।
किं चातः परमस्ति ते स्तुतिपदं यज्जीवनं जीविनां,
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥

हे जल, शीतलता तथा स्वच्छता तुम्हारा स्वाभाविक-सहज गुण है, कहां तक कहें अधम-स्पर्शोपरान्त शुचि (ब्राह्मण) जन स्पर्श (जल-स्पर्श) मात्र से पवित्र हो जाते हैं; अतः जो तुम प्राणिजन के लिए जीवन-स्वरूप हो, उस तुम्हारे-हित किस स्तुति-पद की रचना करूं ? अर्थात् परम स्तुत्य हो, यदि तुम किसी निकृष्ट पथ पर गतिमान् होने-लगे तो कौन है जो रोक सके। (तुम्हारी गतिशीलता सदा अबाध है)। सम्भवतः कवि प्राणिवर्ग की उस अधमवृत्ति को संकेतित करना चाहता है, जिस पर प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् वह पीछे देख ही नहीं पाता। जैसे बहते हुए जल को गति पीछे नहीं मुड़ती।

Scanned by CamScanner

स्थिति-काल

कवि के जीवन-विषयक ऐतिह्य का पुष्ट प्रमाण आजतक अनुपलब्ध है। अनुमानतः यह रहस्यात्मक-सृष्टि को पैनी दृष्टि में समेटने एवं वाणी में सजोनेवाला उन्मुक्तधारा का कवि सातवीं-आठवीं शताब्दी के सन्धिकाल में किसी समय आविर्भूत हुआ होगा। ग्यारहवीं शती-पूर्वार्धभाग में रहे सोढ्ढल ने 'अवन्तिसुन्दरी कथा'—कथामुख के अन्तर्गत पहले अभिनन्द फिर राजशेखर की चर्चा की है, अर्थात् अभिनन्द, राजशेखर से पूर्व आते हैं। राजशेखर नवीं-दशवीं शती के सन्धिकाल में और उनसे कुछ पूर्व सम्भवतः आठवीं का उत्तर और नवीं का पूर्व भाग रहा होगा जब अभिनन्द था। अभिनन्द ने कवि केशट को उल्लिखित किया है। इसी के साथ वसुकल्प एवं सूक्ति-मुक्तककार योगेश्वर ने भी चर्चा की है—

बाणः प्राणिति केशटः स्फुटमसौ जागर्ति योगेश्वरः,
प्रत्युज्जीवति राजशेखरगिरां सौरभ्यमुन्मीलति।
येनायं कलिकालपुष्पधनुषो देवस्य शिक्षावशा-
दाकल्पं वसुकल्प एव वचसि प्रागल्भ्यमभ्यस्यति॥

वसुकल्प

कलिकाल-कामदेव (पुष्पधनुष) के धनुष की निर्मिति में प्रयुक्त सुमन के लिए बाण प्राण-स्वरूप, केशट उसका विकास, योगेश्वर कलिकाओं में उभरती जीवन्तता एवं राजशेखर की वाणी से उसका सौरभ विखरता है परन्तु यह वसुकल्प कामशिक्षा में दक्षता प्राप्त करने के कारण कल्प-पर्यन्त चमत्कृति से पूर्ण रचना में समर्थ है।

उन्नीतो भवभूतिना प्रतिपमं बाणे गते यः पुरा,
यश्चीर्णः कमलायुधेन सुचिरं येनागमत्केशटः।
यः श्रीवाक्पतिराजपादरजसां संपर्कपूतश्चिरं,
दिष्ट्या श्लाघ्यगुणस्य कस्यचिदसौ मार्गः समुन्मीलति॥

योगेश्वर

काव्य-परम्परा, जिसका अनुगमन बाण ने किया, भवभूति ने उसे प्रशस्त बनाया, कमलायुध ने अनुसरण किया, केशट चिरकाल

Scanned by CamScanner

तक सेवन करते रहे, श्री वाक्पतिराज के पद-रज से पवित्र हुआ, प्रशंसनीय गुणों से युक्त वही, किसी कवि योगेश्वर का काव्य मार्ग भाग्यवशात् अभ्युन्नत हो रहा है।

सूक्ति 'क' में वसुकल्प ने क्रमशः बाण, केशट, योगेश्वर के पश्चात् स्वयं को प्रतिस्थापित किया है। बाण, सातवीं शती-पूर्वार्ध भाग में योगेश्वर नवीं के उत्तर भाग में अथवा दशवीं के प्रारम्भ में अर्थात् राजशेखर से पहले (नवीं-दशवीं शताब्दी से पूर्व) था। इस प्रकार केशट बाण का परवर्ती एवं योगेश्वर का पूर्ववर्ती रहा। योगेश्वर ने स्वयं (सूक्ति 'ख' में) भवभूति, बाण, कमलायुध, केशट तथा वाक्पतिराज के अनन्तर अपना स्थान रखा है। पर्यालोचन के पश्चात् यह स्पष्ट है कि कमलायुध और केशट दोनों समकालीन, सम्भवतः बाण के पश्चात् रहे। बाण सातवीं शती के के कवि थे। पूर्वार्ध में थे। अतः केशट सातवीं के उत्तर तथा आठवीं के पूर्वभाग में रहे होंगे। नवीं शती के योगेश्वर ने इस कवि का नामोल्लेख किया है, अर्थ यह है कि उससे पूर्व यह कवि था। अत एव हम केशट को आठवीं शती में किसी समय स्थिर कर सकते।

सूक्तिमुक्तककार केशट

केशट अलमस्त-प्रकृति और स्वच्छन्द विचारधारा का कवि है। वह न किसी प्रवृत्ति विशेष का सापेक्ष था न किसी का अनुभावक। वह अपने कवि-मन को उसकी गति में स्वतंत्र रखता था, वह गति के अनुकूल-पाथेय की उपलब्धि की ललक में किंचित् ठिठका तो उपकरण जुटाने के लिए उसकी प्रातिभ-शक्ति जग गयी। यही कारण है कि वह कवि अपना कोई सुनिश्चित काव्य-मार्ग न प्रतिष्ठित कर सका, प्रकीर्ण-विषयों की बहुरंगी-छवि के माध्यम से उसने जीवन-सत्य का साक्षात्कार करने की दिशा में प्रयत्न किया। वह जीवन की समग्रता, मानव-समष्टि में देखना चाहता है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

केशट समग्रतः मुक्तक-कवि है। उसके काव्य में विषय अथवा विचारधारा की शृंखलाबद्धता के दर्शन कथमपि नहीं होते। यदि

Scanned by CamScanner

कहीं है तो वह जीवन की जैविक-वृत्तियों अथवा उसमें निहित सत्य-गोपन की अविच्छिन्नता से जिसकी अनित्यता का सार्वभौमबोध कवि बड़ी ही तार्किक प्रक्रिया से कराना चाहता है। जल, जोवन है, उसके अभाव में जीवन की अस्तित्व-हीनता देखिए—

अब्जं त्वब्जमथाब्जभूस्तत इतो ब्रह्माण्डमण्डादभू-
द्विश्वं स्थावरजङ्गमात्मकमिदं त्वन्मूलमित्थं पयः ।
धिक् त्वां चौर इव प्रयासि निभृतं निर्गत्य जालान्तरै-
र्वध्यन्ते विवशास्त्वदेकगतयस्त्वामाश्रिता जन्तवः ॥

कमल तो कमल है अर्थात् कमल तो जल से उत्पन्न होता ही है, उस कमल से उद्‌भूत ब्रह्मा (अब्जभू) उससे ब्रह्माण्ड, उसका अण्डभूत, यह स्थावर-जंगम रूप समस्त विश्व उसका मूल भी इस प्रकार हे पय (जल) तुम ही हो तुमको धिक्कार है जो चोर के समान, जालान्तर (जाल के छिद्रों) से निकलकर चुपचाप चले जाते हो, तुम्हारे आश्रित जन्तु (जल में रहनेवाले प्राणी जिनको जाल डालकर पकडा जाता है) विवश-स्थिति में मारे जाते हैं। यह कवि सम्भवतः किसी राजसभा ही नहीं अपितु कथमपि किसी सुख-समृद्ध जन का आश्रित अथवा प्रशंसक न होकर, प्राणिजन की वृत्ति-प्रवृत्ति का सूक्ष्म-निरीक्षण एवं निदर्शन करनेवाला जीवन-राग का गायक है––

नादत्से हरिताङ्कुरान्क्वचिदपि स्थैर्यं न यद्‌गाहसे,
यत्पर्याकुललोचनोऽसि करुणं कूजन्दिशां पश्यसि ।
दैवेनान्तरितप्रियोऽसि हरिण क्षीणोऽसि यत्प्रत्यहं,
प्रत्यद्रि प्रतिकाननं प्रतिनदि प्रत्यूषरं धावसि ॥

चेतन की चेतस-गति का कितना सूक्ष्म आकलन है––वन-प्रान्त में प्रिया-वियुक्त हरिण का हृदय किस स्थिति में पड़ गया––वह तन-मन दोनों से ही अस्थिर है कथमपि स्थिर नहीं हो पाता, धैर्य गंवाता जा रहा है। वह अंकुरित हरित तृण तक नहीं ग्रहण करता, छल-छलायी आंखों से करुण-स्वर में (बोलता उसे पुकारता-सा) सभी दिशाओं में ढूढता है, दैवात् वह प्रिया से बिछुड़ा, क्षीण-तन प्रतिदिन एक-एक पर्वतखण्ड, एक-एक वन-प्रदेश और नदी तटों की ओर (उसे

Scanned by CamScanner

ढूढने के लिए) दौड़ता रहता है। यह कवि-कल्पना-तरंगों से उद्वेलित अगाध-भावसिन्धु से उच्छरित प्रेयस् श्रेयस् रूप बिन्दुओं को शब्द-सूत्र-द्वारा ग्रथित करने में अतुलनीय है। कवि, चाहे समुद्र चाहे सरिता, चाहे मरुभूमि, चाहे बड़वानल का वर्णन हो, श्रेय-प्रेय की शुभावह रसधार से संपृक्त कर देता है। सहज-भाव-गुम्फन, सरस-कल्पना, सूक्ष्म-दृष्टि एवं प्रकृत-प्रभावकता इस कवि के काव्यगुण हैं। एक अनोखी उद्भावना देखिए—

इदं तत्कालिन्दीतटमिह हि कंसासुरभिदो,
यशः श्रृण्वद्‌वक्त्रस्खलितकवलं गोकुलमभूत् ।
भ्रमाद्‌वेणुक्वाणप्रणयमसृणोत्तारमधुर-
स्वराभिगर्गोपीभिर्दिशि दिशि समुद्‌गीर्णमनिशम् ॥

यह वह यमुना का तट है जहां श्रीकृष्ण द्वारा कोमल-अनुरागपूर्ण मधुर-स्वर स्वरित वेणु-नाद सुनकर, गोपिकाजन के मुख से स्खलित कवल (ग्रास) गोकुल की हर दिशाओं में यशरूप होकर बिखरा हुआ है। ऐसी उद्भावनाएं कवि की रति, सखि-संलाप, प्रोषित-संदर्भ बड़वानलवाले-समुद्र आदि विषयक-मुक्तकों में भी अत्यन्त मनोरम हैं। भाषा-भाव गुम्फन की सहचारिणी कल्पना से युक्त मधुर-संयोग का तो वह परमास्पद है।

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

पृष्ठभ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलाच्छलेनाम्भसां,
यातायातमयन्त्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ।।१

⊙

चक्र ब्रूहि विभो ! गदे जय हरे कम्बो समाज्ञापय ।
भो भो नन्दक ! जीव पन्नगरिपो किं नाथ भिन्नो मया ।
को दैत्यः कतमो हिरण्यकशिपुः सत्यं भवद्भ्यः शपे,
केनास्त्रेण नखैरिति प्रवदतः शौरेर्गिरः पान्तु वः ।।२

⊙

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लंघ्यतां,
गेहिन्या परितोषवाष्पतरलामासज्ज्य दृष्टिं मुखे ।
दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान्स्वेनाञ्चलेनादरा-
दामृष्टं करभस्य केसरसटाभाराग्रलग्नं रजः ।।३

⊙

हारावली त्रुटति न प्रणयः प्रियाणा-
माखण्ड्यतेऽधरदलं न मनोभवाज्ञा ।
यस्मिन्विलेपनमपैति न चानुराग-
स्तन्मोहनं न खलु मैथुनमन्यदस्मात् ।।४

⊙

मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति,
कान्तस्वहस्तलिखिता मम मञ्जरीति ।
अन्यापि किं न सखि ! भाजनमीदृशानां,
वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ।।५

Scanned by CamScanner

विस्तारो यदि नेदृशो न यदि तद्गाम्भीर्यमम्भोनिधे-
र्न स्याद्वा यदि सत्त्वमात्र-विषयस्तादृग्दयानुग्रहः ।
अन्तः प्रज्वलता पयांसि दहता ज्वालावलीं मुञ्चता,
के न स्युर्वडवानलेन बलिना भस्मावशेषीकृताः ॥६

⊙

चातुर्वर्ण्यविहारिणस्तव पयः स्पर्शो न गर्हाकरः,
पात्रे सत्यकुलीनता न भवति त्वल्लाघवाद् गौरवम् ।
इत्थं लोकविनिन्दते च चरिते त्वं मूर्तिरीशस्य चे-
त्प्रायेणेश्वरभूषितस्य चरितं शक्नोति को गाहितुम् ॥७

⊙

अब्जं त्वब्जमथाब्जभूस्तत इतो ब्रह्माण्डमण्डादभू-
द्विश्वं स्थावरजङ्गमात्मकमिदं त्वन्मूलमित्थं पयः ।
धिक् त्वां चौर इव प्रयासि निभृतं निर्गत्य जालान्तरै-
र्वध्यन्ते विवशास्त्वदेकगतयस्त्वामाश्रिता जन्तवः ॥८

⊙

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः स्वाभाविकी स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे ।
किं चातः परमस्ति ते स्तुतिपदं यज्जीवनं जीविनां,
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥९

⊙

धिग्वाडवं दहनमर्थितया विपक्ष-
मभ्येति यः स्वजठरप्रतिपूरणाय ।
धिग्वारिराशिमपि यो हि तथाविधस्य,
शत्रोर्जलैरपि न पूरयतेऽभिलाषम् ॥१०

⊙

आश्चर्यं वडवानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि-
र्यत्कार्याऽतिशयं विलोक्य हृदये कम्पः समुत्पद्यते ।
एकस्याश्रयघस्मरस्य पिबतस्तृप्तिर्न जाता जलै-
रन्यस्यापि महात्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि तोयव्ययः ॥११

Scanned by CamScanner

गाम्भीर्यं भयदायि ते रसवशान्नानात्वमप्यद्भुतं,
न स्थैर्यं शिरसा धृतस्य च मुखं दुर्वारमेकान्ततः ।
शक्तिस्ते महतोऽचलानपि भिदां नेतुं पयो ब्रूहि मे,
सोदर्यास्तव किं खला विभजता लब्धास्त्वया यद्गुणाः ॥१२

⊙

स्वातन्त्र्यं तव नीचसर्पणमथो पात्रे स्थितौ नेयता,
तच्चित्रं प्रकटीकरोति कलुषीभावोन्यजन्यस्तव ।
स्नेहो हन्त !! तवान्तरं न लभते पृच्छामि तत्त्वां पयः,
शिष्यः किं नु दुरीश्वरस्तव सखे ! किं वा त्वदीयो गुरुः ॥१३

⊙

नादत्से हरिताङ्कुरान्क्वचिदपि स्थैर्यं न य द्गाहसे,
यत्पर्याकुललोचनोऽसि करुणं कूजन्दिशः पश्यसि ।
दैवेनान्तरितप्रियोऽसि हरिण क्षोभोऽसि यत्प्रत्यहं,
प्रत्यद्रि प्रतिकाननं प्रतिनदि प्रत्यूषरं धावसि ॥१४

⊙

इदं तत्कालिन्दीतटमिह हि कंसासुरभिदो,
यशः शृण्वद्वक्त्रस्खलितकवलं गोकुलमभूत् ।
भ्रमाद्वेणुक्वाणप्रणयमसृणोत्तारमधुर—
स्वराभिर्गोपीभिर्दिशिदिशि समुद्गीर्णमनिशम् ॥१५

⊙

विष्णुर्बभार भगवानखिलां धरित्रीं,
तं पन्नगस्तमपि तत्सहितं पयोधिः ।
कुम्भोद्भवस्तु तमपीयत हेलयैव,
सत्यं न कश्चिदवधिर्महतां महिम्नः ॥१६

⊙

अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥१७

⊙

तद्ब्रह्माण्डमिह क्वचित्क्वचिदपि क्षोणी क्वचिन्नीरदास्,
ते द्वीपान्तरमालिनो जलधयः क्वापि क्वचिद्भूभृतः ।
आश्चर्यं गगनस्य कोऽपि महिमा सर्वैरमीभिः स्थितैर्,
दूरे पूरणमस्य शून्यमिति यन्नामापि नाच्छादितम् ॥१८

Scanned by CamScanner

सिन्धोरर्णः स्थगितगगनाभोगपातालकुक्षः,
पोतोपाया इह हि बहवो लङ्घनाय क्षमन्ते ।
आहो रिक्तः कथमपि भवेदेष दैवात्तदानीं,
को नाम स्यादतटकुहरालोकनैर्यस्य कल्पः ॥१९

⊙

यस्मिन्नापस्तदधिकरणस्यास्य वह्नेर्निवृतिः,
संवासन्ते व्रजति जलदे वैकृतस्ताभिरेव ।
अस्त्यन्योऽपि प्रलयरजनीसंनिपातेऽप्यनिद्रो,
यः सामुद्रीरविरतमिमास्तेजसि स्वे जुहोति ॥२०

⊙

गोमायवः शकुनयश्च शुनां गणोऽयं,
लुम्पन्ति कीटकृमयः परितस्तथैव ।
स्वां संपदं सकलसत्त्वकृतोपकारा—
न्नो दृष्टवान् यदसि तच्छव वञ्चितोऽसि ॥२१

⊙

दिङ्भातगंघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते,
सिद्धा सापि वदन्त एव हि वयं रोमाञ्चिताः पश्यत ।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो
यत्रैवाविरभूत्कथाद्भुतमिदं यत्रैव चास्तंगतम् ॥२२

⊙

हा तातेति न जल्पितं न रुदितं न स्वीकृतं तद्धनं
न स्नातं न च वीक्षितः परिजनः पित्रे न दत्तं जलम् ।
यावन्न क्रकचाभिघातविगलद्दाम्नामरीणामसृ-
ग्गण्डूषैर्घनघोरघर्घररवाः सन्तर्पिताः फेरवः ॥२३

⊙

गोत्राचारविशेषपारगतया वृद्धाभिरादिष्टया
मात्रा वस्तुषु तेषु तेषु विशदन्यस्तेषु दृष्टेः पुरः ।
अन्नप्राशनवासरे सरभसं वक्षोभरोत्सर्पिणा
येनात्तं धनुरीक्षिताश्च झटिति क्षत्रावतंसा दिशः ॥२४

Scanned by CamScanner

शीलाभट्टारिका

शब्दार्थयोस्समो गुम्फः पांचाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ।

राजशेखर

⊙

शीलाविज्जामारुलामोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञास्त्रियोऽपि ।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणस्स वन्द्यः ॥

शार्ङ्गधरपद्धति

Scanned by CamScanner

शीलाभट्टारिका

मनोवैज्ञानिक चित्रण में अद्वितीय शीलाभट्टारिका के छन्द प्रायः सभी सुभाषित एवं अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में उद्‌धृत है। काव्य-विषयों को समग्रतः हम शृंगारवर्णन कह सकते हैं—कहीं नायक-नायिका का प्रणय-कलह, कही प्रिय-वियुक्ता का स्वावस्था निवेदन आदि।

स्थिति-काल

शीलाभट्टारिका के छन्द रुय्यकरचित अलंकारसर्वस्व कवीन्द्रवचनसमुच्चय, शाङ्गधरपद्धति और राजशेखरकृत 'काव्य-मीमांसा' से उद्‌धृत किये गये हैं। अलंकारसर्वस्व का रचनाकाल बारहवीं शती का पूर्वार्द्ध तथा शाङ्गधरपद्धति का समय चौदहवीं शती का उत्तर भाग है। राजशेखर नवीं शती के उत्तर भाग एवं दशवीं के पूर्व भाग में किसी समय थे। अतएव यह कवयित्री नवीं शती के पूर्व भाग (सम्भवतः प्रारम्भ में स्थित रही होगी)। वह संस्कृत कवयित्रियों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी—

शीलाविज्जामारुलामोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञा स्त्रियोऽपि।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणस्स वन्द्यः॥

शाङ्गधरपद्धति

शब्दार्थयोस्समो गुम्फः पांचालीरीतिरुच्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

राजशेखर

Scanned by CamScanner

य: कौमार-हर: स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपा-
स्ते चोन्मीलित-मालती सुरभय: प्रौढा कदम्बानिला: ।
सा चैवास्मि तथापि चौर्य सुरत-व्यापार-लीला-विधौ,
रेवारोधसि वेतसी-तरु-तले चेत: समुत्कण्ठते ।।

अलंकारसर्वस्व

काव्य-वैशिष्ट्य

शीलाभट्टारिका का काव्य अन्य सूक्ति-कवि और कवयित्रियों की परम्परा के अनुसार नृप, नृपवैभव, सर, नदी, उपवन, वृक्ष, लता, सूर्योदय, सान्ध्य, प्रात:, वसन्त, वर्षा आदि-वर्णनों से मुक्त है। यह तो शृंगाररस की कवयित्री हैं--

विरह-विषमो वाम: काम: करोति तनुं तनुं,
दिवस-गणनाऽदक्षश्चायं व्यपेत-धृतो यम: ।
त्वमपि वश्यो मान-व्याधेर्विचिन्त्य नाथ हे !
किसलय-मृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदा-जन: ।।

प्रिय वियुक्त तरुणी का कथन--विषम-विरह क्षण-प्रतिक्षण सन्तप्त कर रहा है, कामदेव मेरे शरीर को क्षीण करता जा रहा है, दिवस गणना में निपुण यम भी मेरे प्रति कृपा विस्मृत कर चुका है। वह विरह वेदना से पराजित मरणोत्सुका हो चुकी है। कहती है--हे नाथ ! तुम भी अब रोषाभिभूत हो गये, फिर सोचो ऐसी स्थिति में कलिका के समान सुकुमार नारी कैसे जीवन धारण करेगी।

निम्नलिखित छन्द में नायिका एव उसकी दूती का संवाद अत्यन्त ही सरस और उद्बोधक है। हास्य भावाभिव्यक्ति से पूर्ण दोनों का कथोपकथन बड़ा ही रोचक बना है—

श्वास: किं त्वरितागता पुलकिता कस्माद् प्रसाद कृत:,
त्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गमितं क्षामा किमत्युक्तिभि-
र्दूति ! म्लान-सरोरुहाकृति-धरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ।।

प्रश्न—तेज (हांफने) का क्या कारण है ?

उत्तर—मैं बहुत तेज-गति से आयी, इसलिए।

प्रश्न—बहुत प्रसन्न क्यों हो ?

उत्तर—अच्छा स्वागत हुआ।

प्रश्न—वेणी क्यों शिथिल है ?

उत्तर—चरणों पर नत होने से।

प्रश्न—नीवी-बन्ध क्यों खिसका प्रतीत हो रहा है ?

उत्तर— गमनागमन के कारण।

प्रश्न—मुख पर स्वेदकण क्यों ?

उत्तर—सूर्य-रश्मियों की प्रखर-उष्णता से।

प्रश्न—प्रिय दूतिके। व्यर्थ बकवास से क्या लाभ ? तुम्हारे अधर म्लान कमलदल-सदृश प्रतीत हो रहे हैं। उनके सम्बन्ध में क्या कहना है ? कवयित्री ने अत्यन्त ही चातुर्य और मनोवैज्ञानिक-रीति से नायिका दूती एवं नायक के प्रति सन्देह तथा विश्वासहनन का चित्रण कर दिया है।

शीलाभट्टारिका की भाषा प्रवाहमयी-माधुर्यगुण-सम्पन्न है। लयात्मकता इनके काव्य का वैशिष्ट्य है एवं सहज-भावबोध उसकी प्रकृति। राजशेखर ने इस कारण पांचाली-रीति-निपुणा इस कवयित्री को बाण के समान कहा है।

इनकी रचनायें

⊙

विरह-विषमो वामः कामः करोति तनुं तनुं,
दिवस-गणनाऽदक्षश्चायं व्यपेतघृणो यमः ।
त्वमपि वशगो मान-व्याधेर्विचिन्त्य नाथ हे!
किसलय-मृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदा-जनः ॥१

⊙

प्रिया-विरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता ।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ॥२

⊙

दूति ! त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः,
सन्देशः स रहस्य एव विजने सङ्केतकावासकः ।
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो नयत्यन्यतो,
गच्छ क्षिप्र-समागमाय निपुणं रक्षन्तु ते देवताः ॥३

⊙

श्वासः किं त्वरितागतात्पुलकिता कस्मात् प्रसादः कृतः,
त्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गमितं क्षामा किमत्युक्तिभि-
र्दूति ! म्लान-सरोरुहकृतिधरस्योष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥४

⊙

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपा-
स्ते चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।
सा चैवाऽस्मि तथापि चौर्य-सुरत-व्यापार-लीलाविधौ,
रेवारोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते ॥५

⊙

Scanned by CamScanner

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां,
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ।
इदमपि न कृतं नितम्बिनीनां,
स्तन-पतनावधि जीवितं रतं वा ॥६



Scanned by CamScanner

वल्लण

विन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः कर्ता शिरो बिन्दुकं,
कर्मेत्यन्वयकल्पनां विदधते ये केऽपि तेभ्यो नमः ।
ये तु ग्रन्थसहस्रशाणकषणत्रुट्यत्कलङ्कैर्गिरा-
मुल्लासैः कवयन्ति वल्लणकविस्तेष्वेव संनह्यते ॥

—वल्लण

Scanned by CamScanner

वल्लण

'सूक्ति-धेनु-सरस्वती' के पुत्र वल्लण ने अपने कवि-कर्म को मा सरस्वती के सहज वात्सल्य से जो सिक्त किया, उससे छिटकती बूँद-रूप उनकी सूक्तियों को भाव अर्थ में बाँधते समय कल्पना-सौन्दर्य की भूमि पर अवस्थित होकर ही कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही काव्यानन्द में निमग्न हो सकता है। इनकी रचनाओं में कठिन पदावली और गम्भीर-अर्थबोध देखने को मिलता है। अन्य सूक्ति रचनाकारों के ही सदृश यह भी विविध-विषयों को वाणी में बाँधा है। कवि को अपनी सूक्ति पर गर्व है—

स्तम्भावधेहि निमिषं पठामि सूक्तीः स्वचित्तनिर्वृतये ।
मा बुध्यस्व न तावद् वागुल्काभिः कदर्थयसि ।।

क्षण मात्र धीरज रखें (शान्ति रखें) मैं चित्त-आह्लादिनी सूक्ति पढ़ रहा हूँ, किन्तु हां, यदि समझ से परे हो तो वाणीरूप-उल्का (ज्वाला) से मुझे सन्तप्त मत करना। इतना ही नहीं उनका उद्घोष है—यह वल्लण कवि उन सभी कवियों से वाक्युद्ध करने के लिए तत्पर है, जो सहस्रों ग्रन्थों के प्रणेता हैं पर काव्यशास्त्रीय कसौटी पर रखकर उन्हें प्रशस्त करने की चेष्टा में शास्त्रीय-स्थापना ही खण्डित हो उठती है, तथापि वह अपनी उस कलंकित वाणी द्वारा अति उल्लासभाव में काव्य-संरचना करना चाहते हैं और उन सबके प्रति मैं नतमस्तक हूँ जो विद्वद्वर्ग के द्वन्द्व में प्रथमपंक्तिभाजन हैं तथा जो उनके अनुगामी हैं—

विन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः कर्ता शिरो बिन्दुकं,
कर्मेत्यन्वयकल्पनां विदधते ये केऽपि तेभ्यो नमः ।
ये तु ग्रन्थसहस्रशाणकषणत्रुट्यत्कलङ्कैर्गिरा—
मुल्लासैः कवयन्ति वल्लणकविस्तेष्वेव संनह्यते ।।

स्थिति-काल

कविवल्लण-विषयक प्रामाणिक इतिहास अन्य सूक्ति कवियों के ही सदृश अद्यावधि अनुपलब्ध है। डॉ० हरदत्त शर्मा ने सदुक्ति-कर्णामृतम् को तथा 'कवीन्द्रवचनसमुच्चय' की भूमिका (क्रमशः पृष्ठ १०७ एवं पृष्ठ १००) में डॉ० ट्रामस ने मात्र नामोल्लेख करके विराम ले लिया है। हाँ, डी० डी० कौशाम्बी के उल्लेख (सुभाषित-रत्नकोष भूमिका—पृष्ठ ९६) - वह एक पाल दरबार का कवि था। वह एक अज्ञात राजा (कलि-काल) कर्ण—की प्रशंसा करता है जिसे संकेत के द्वारा हम दिशाबोध ग्रहण कर सकते हैं—

लक्ष्मीसद्मसरोजरेणुसुहृदः सेवावनम्रीभव-
द्भूमीपालकिरीटरत्नकिरणज्योत्स्नानदीबालुकाः ।
जीयासुः कलिकालकर्णनृपते ! दारिद्र्यदारुदर—
व्याघूर्णद्घुणवृन्दलङ्घनमुषस्त्वत्पादयोः पांशवः ॥

हे कलियुग के लिए कालसम कर्णराज, लक्ष्मी के निवासस्थान कमल-पराग के सदृश, तथैव तेरे सामने सेवा के लिए झुके हुए नरेशों के मुकुट में जटित रत्नकिरणों के चन्द्रप्रकाश-रूप नदी में बालुका-कण-सदृश दिखायी देनेवाले तथा प्रजाजन को दुखदायी दरिद्रता रूपी कीटों के नाशक तुम्हारे चरणों के रजकण सदा विजयी हों।

इसी नृपति कर्ण की प्रशंसा में एध छन्द कवि विल्हणरचित विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के अन्तर्गत भी प्राप्त होता है—

कालः कालंजरगिरिपतेर्यः प्रयाणे धरित्री,
तुक्खाराणां खुरपुटरवैः क्षमापशून्यां चकार ।
श्रीडाहालक्षितिपरिवृढः सोऽपि यं प्राप्य वृत्तं,
कर्णः कर्णामृतरसभरास्वादमन्तस्ततान ॥

सर्ग १८।९३

कालंजर पर्वत के स्वामी चन्देल नृपति - हित काल-सदृश, जो केवल अपने घोड़ों की टापों की आवाज से नृपसमाज को कम्पित कर देता था, डाहाल देश का अधिपति कर्ण मेरा काव्य सुनकर कर्णामृतरस का आस्वादन करने लगा।

Scanned by CamScanner

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि दोनों कवि विल्हण तथा वल्लण एक ही नृपति के सभा-रत्न थे। इस नृप ने अश्वपति गजपति-राजत्रयाधिपति की उपाधि धारण की थी। यह त्रिपुरा के कलचुरि-नरेशों को बारहवीं पीढ़ो में उत्पन्न सर्वाधिक प्रतापी था। इसका शासनकाल इसवी सन् १०४१-१०७३ था। वल्लण विल्हण का समकालीन न था। अत एव हम वल्लण की स्थिति ग्यारहवीं शती के उत्तरभाग में किसी समय निश्चिय कर लेना उचित मानते हैं।

सूक्ति-कवि वल्लण

वल्लण, राजसभा का कवि था, इस कारण उसका काव्य वैभव-विलास चित्रण से पूर्ण है। 'विन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः' छन्द से संकेत है कि उस काल में काव्य-प्रतियोगिताएँ अथवा समस्यापूर्तियों को परम्परा थी। प्रायः विदग्धवाणी-गुम्फन द्वारा कविगण राजसभाओं में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित तथा आश्रयदाता नृपति से सम्मान प्राप्त करते थे। यही कारण है कि वल्लण का काव्य यत्र-तत्र दुर्बोधता की कसौटी बन गया है और कवि ने गर्वोक्तियाँ भी रचो थीं। यद्यपि अद्यावधि विविध सुभाषित ग्रन्थों से उपलब्ध कतिपय छन्द जलद, महेश्वर, श्मशान का भी वर्णन करते हैं किन्तु उनका विषय प्रमुखतः चाटुकारिता, अन्यापदेश, अनुराग, दूतीकथन, विरहिणी, मानिनी, युवती, आम के वृक्ष पर स्थित भ्रमर, मदन, स्तन आदि का दिव्य चित्रण हैं। कवि की एक व्यंग्योक्ति है--

अर्वाचीनवचः प्रपंचसुखिनां दुःशिक्षितानां पुरो।
गम्भीरं कविपुङ्गवस्य किमहो !! सर्वस्वमुद्घाट्यते,
व्यर्थं कदर्मगन्धगौरवहृतग्रामीणगोष्ठीमुखे,
कोऽयं नाम सचेतनोऽस्ति य इह प्रस्तौति कस्तूरिकाम् ॥

आधुनिक वाणी, भौतिक प्रपंचों से सुखभोगी दुःशिक्षित जनों के समक्ष श्रेष्ठकवियों द्वारा गुम्फित गम्भीर भावपूर्ण काव्य का सार क्यों उद्घाटित (स्पष्ट) करते हो? यह सब यहाँ व्यर्थ है। गंदगी से जिन ग्रामवासियों का गौरव हर लिया गया है, ऐसे जनों की गोष्ठी के समक्ष गुण का व्याख्यान करना मूर्खता है। इसी क्रम में किसी

Scanned by CamScanner

उदात्तहृदयजन के क्रिया-कलाप का कथन, जलद के माध्यम से कवि कर रहा है--

उपैति क्षाराब्धिं वहति बहुवातव्यतिकरं,
पुरो नाना भङ्गा ननु भवति पश्यैष जलदः ।
कथंचिल्लब्धानि प्रवितरति तोयानि जगते,
गुणं वा दोषं वा न गणयति दानव्यसनिता ।।

देखो, जलद सागर तक अनेकशः वायु के थपेड़ों को सहन करता और बहुत बार वह खण्ड-खण्ड हो जाने के दुःख की अनुभूति करता, जो भी कुछ किसी प्रकार प्राप्त कर सका था, वह जगत् को बिना किसी भेद-भाव के जल वितरित करता हुआ दान-व्यसन के कारण गुण-दोष का भी विवेचन नहीं करता है। लोकमंगल भावी सत्पुरुष की यही प्रकृति होती है।

वल्लण की रचनाओं के अध्ययन से यह सहज ही आभास प्राप्त होता है कि यह कवि सूक्तिकार बाद में प्रथमतः तो विदग्ध--गोष्ठी में वाग्वैचित्र्य, अर्थचमत्कृति, पदसंरचना-नैपुण्य (पद-संयोजन की जादूगरी) एवं भाव-संश्लेषण द्वारा अपना वैदुष्य स्थापित करनेवाला है--जिसका उद्घोष वह इस रूप में करता है--

परमाद्भुतरसधामन्युल्ललिते जगति वल्लनाऽम्भोधौ ।
विश्रान्तो रसभागस्तिमितर्यति यथा गभीरिमा कोऽपि ।।

इनकी रचनायें

⊙

विन्दुद्वन्द्वतरङ्गितागप्रसरणिः कर्ता शिरोविन्दुकं,
कर्मेत्यन्वयकल्पनां विदधते ये केऽपि तेभ्यो नमः ।
ये तु ग्रंथसहस्रशाणकषणत्रुटयत्कलङ्कै गिरा-
मुल्लासैः कवयन्ति वल्लणकविस्तेष्वेव संनह्यते ॥१

⊙

धिग्धिक् तान्समयान्परिश्रमरुजो वक्तुं गिरा नीरसा,
यत्रामूर्निपतन्ति वल्लणगुणोत्स्वातामृतप्रीतयः ।
रोम्णां नृत्यभुवो विलोचनपयः पूराब्धिचन्द्रोदयाः,
साहित्यप्रतिगण्डगर्वगलनं ग्लानिक्रियाहेतवः ॥२

⊙

स्तम्भावधेहि निमिषं पठामि सूक्तीः स्वचित्तनिर्वृतये ।
मा बुध्यस्व न तावद्वागुल्काभिः कदर्थयसि ॥३

⊙

इत्थं व्यर्थितवाञ्छितेषु हि मुधैवास्मासु किं खिद्यसे ।
मातः ! काव्यसुधे ! कथं क्व भवतीमुन्मुद्रयामो वयम् ॥४

⊙

अर्वाचीनवचः प्रपञ्चमुखिनां दुःशिक्षितानां पुरो,
गम्भीरं कविपुङ्गवस्य किमहो !! सर्वस्वमुद्धाट्यते ।
व्यर्थं कर्दमगन्धगौरवहृतग्रामीणगोष्ठीमुखे,
कोऽयं नाम सचेतनोऽस्ति य इह प्रस्तौति कस्तूरिकाम् ॥५

Scanned by CamScanner

उत्तानोल्लपितप्रतारितनवश्रोत्रैः कथं भाव्यताम्,
वाक्पत्यंशनिवेशिताखिलजगत्तत्त्वा कवीनां कला ।
रथ्यागर्तविगाहनाद्भुतकृतैर्गाह्यः क्व रत्नाकरो,
यस्यान्तः शफरावमाननतटीमज्जद्गिरीन्द्राः श्रियः ॥६

⊙

अनुद्घुष्टः शब्दैरथ च घटनातः स्फुटरसः,
पदानामर्थात्मा रमयति न तूत्तानितरसः ।
यथा किंचित्किंचित्पवनचलचीनांशुकतया,
स्तनाभोगः स्त्रीणां हरति न तथोन्मुद्रिततनुः ॥७

⊙

अम्बा येन सरस्वती सुतवती तस्यार्पयन्ति रसान्,
नाना चाटुमुखी स दुर्लडितवान् खेलाभिरुच्छृङ्खलः ।
जिह्वादुर्व्यसनैरुपद्रवरुजः कुर्वन्ति ये दुःसुतास्,,
तान्दृष्ट्वार्थमितस्ततो निखनति स्वं निःस्वमातन्वती ॥८

⊙

परमाद्भुतरसधामन्युत्सलिते जगति वल्लनाम्भोधौ ।
विश्रान्तो रसभागस्तिमितयति यथा गंभीरिमा कोऽपि ॥९

⊙

तादृक्सप्तसमुद्रमुद्रितमहीभूभृद्भिरभ्रंकषै-
स्तावद्भिः परिवारिता पृथुपृथुद्वीपैः समन्तादियम् ।
यस्य स्फारफणामणौ निलयनात्तिर्यक्कलङ्काकृतिः,
शेषः सोऽप्यगमद्यदङ्गदपदं तस्मै नमः शम्भवे ॥१०

⊙

याच्यो न कश्चन गुरुः प्रतिमा च कान्ता,
पूजाविलोकननिगूहनचुम्बनानि ।
आत्मा निवेद्यमितरव्रतसारजेत्रीं,
वन्दामहे मकरकेतन ! देव दीक्षाम् ॥११

Scanned by CamScanner

एतन्मन्दविपक्वतिन्दुकफलश्यामोदरापाण्डुर-
प्रान्तं हन्त पुलिन्दसुन्दरकरस्पर्शक्षमं लक्ष्यते ।
तत्पल्लीपतिपुत्रि कुञ्जरकुलं कुम्भाभयाभ्यर्थना
दीनं त्वामनुनाथति स्तनयुगं पत्रावृतं मा कृथाः ॥१२

⊙

आत्ते वाससि रोद्धुमक्षमतया दोः कन्दलीभ्यां स्तनौ,
तस्योरःस्थलमुत्तरीयविषये सख्यो मया चिन्तितम् ।
श्रोणीं तस्य करेऽधिरोहति पुनर्व्रीडाम्बुधौ मामथो,
मज्जन्तीमुदतारयन्मनसिजो देवः स मूर्छागुरुः ॥१३

⊙

लक्ष्मीसद्मसरोजरेणुसुहृदः सेवावनम्रीभव-
द्भूमीपालकिरीटरत्नकिरणज्योत्स्नानदीवालुकाः ।
जीयासुः कलिकालकर्णनृपते ! दारिद्र्यदारूदर-
व्याघूर्णद्घुणवृन्दलङ्घनमुसस्त्वत्पादयोःपांशवः ॥१४

⊙

दुरर्थैर्यत्काचभ्रमभवकलङ्कस्त्वयि कृतो-
जगच्चूडाचुम्बिन् ! मरकत ! स कस्ते परिभवः ।
यदस्माभिस्तूष्णीं स्थितमिह तवालोचनपथे,
तदन्तर्दुष्पूरोदरभरणदैन्यव्यवसितम् ॥१५

⊙

धन्यस्त्वं सहकार ! संप्रति फलैः काकान् शुकान्पूरय-
न्पूर्वं तु त्वयि मुक्तमञ्जरिभरोन्निद्रे य इन्दिन्दिरः ।
अक्रीडन्निमिषं स नैति फलितं यस्त्वां विकाशैकमुत्,
तद्धर्मोऽस्य फलाशया परिचयः कल्पद्रुमेप्यस्ति किम् ॥१६

⊙

निश्चेतुं मकरन्दबिन्दुजनितानन्दारविन्दाकर-
क्रीडानिस्पृहयालुमानसतया मन्दायमानादरः ।
स्फारोद्गच्छदपूर्वमञ्जरिभरप्रादुर्भवत्सौरभं,
श्रद्धालुर्न कथं प्रयातु सहसा माकन्दमिन्दिन्दिरः ॥१७

Scanned by CamScanner

आस्तां तावदसीमपौरुषजुषः संमानितात्यद्भुत-
प्रारम्भाभ्यधिकक्रियस्य स खलु प्राच्यः प्रचारो हरेः ।
जीर्णस्यापि च विन्ध्यकन्दरदरीद्वारावताराक्षमै-
रङ्गै रङ्गभृतो दलन्ति दरतो गन्धेन गन्धद्विपाः ॥१८

⊙

उपैति क्षाराब्धिं वहति बहुवातव्यतिकरं,
पुरो नानाभङ्गा ननु भवति पश्येष जलदः ।
कथंचिल्लब्धानि प्रवितरति तोयानि जगते,
गुणं वा दोषं वा न गणयति दानव्यसनिता ॥१९

⊙

स्तब्धस्तिष्ठसि पश्यदन्धपुरतः किं दर्शनाकाङ्क्षया,
जल्पन्मूकमुखादितः प्रतिवचः किं श्रोतुमाकाङ्क्षसि ।
यः शृण्वद्बधिरः शृणोति स कथं विज्ञप्तिकां तावकीं,
प्राणप्रेतमुपासमाननपठन्मूर्खस्त्वदन्यो जनः ॥२०

⊙

रथ्यान्तश्चरतस्तथा धृतजरत्कन्थालवस्याध्वगैः,
सत्रासं च सकौतुकं च सकृपं दृष्टस्य तैर्नागरैः ।
निर्व्याजीकृतचित्सुधारसमुदा निद्रायमानस्य मे,
निःशङ्कं करटः कदा करपुटीभिक्षां विलुण्ठिष्यति ॥२१

⊙

गतः कालो यत्र प्रणयिनि मयि प्रेमकुटिलः,
कटाक्षः कालिन्दीलघुलहरिवृत्तिः प्रभवति ।
इदानीमस्माकं जरठकमठीपृष्ठकठिना,
मनोवृत्तिस्तत्किं व्यसनिनि मुधैव क्षपयसि ॥२२

⊙

धिग्धिक्तान् कृमिनिर्विशेषवपुषः स्फूर्जन्महासिद्धयो,
निष्पन्दीकृतशान्तयोपि च तपःकारा गृहेष्वासते ।
तं विद्वांसमिह स्तुमः करपुटीभिक्षाल्पशाकेऽपि वा,
वालावत्क्रसरोजिनीमधुनि वा यस्याविशेषो रसः ॥२३

मृत्पिण्डेन भुवैव किं तदनु तद्भेदेन किं मेरुणा,
किं ब्रह्माण्डजरायुकोटरकुटीकीटैः सुराख्यैरपि ।
त्रैलोक्येऽपि दयालुशौख्यललितान्याश्चर्यमेतत्पुन-
श्चेतोद्भूतसमाधिनीरधिसुधापूरप्लवं गाहते ॥२४

⊙

उन्मुक्तक्रमहारिशैलशिखरात्क्रामन्तमन्यो धरः,
कोऽत्र त्वां शरभोकिशोरपरिषद्धौरेय धर्तुं क्षमः ।
तस्मादुद्गमकेलिलङ्घनकलादुर्वीतलादुद्व्रज,
त्वद्धासाय स एव कीर्तिकनकज्योत्स्नो गिरीणां पतिः ॥२५

⊙

यस्यानुद्धुरगन्धवातकणिकातङ्कार्तिनानादरी-
कोणोदञ्चदुरोनिगूहितशिरः पुच्छा हरीणां गणाः ।
दृप्यद्दुर्जयगन्धसिन्धुरजयोत्खातेन का मे स्तुतिः,
स्मेरोऽयं शरभः परं हृदि घृणामायाति जातस्मयः ॥२६

⊙

प्रत्येकानन्तजातिप्रतिवपुरमितावृत्तिजन्मार्जितैनो-
भोक्तृव्रातोज्जिहीर्षाफलनिलयमहापौरुषस्यापि शास्तुः ।
केऽप्युत्कर्षं स्तुवन्ति स्मरमपि जयतस्तद्वदामः किमस्मिन्,
यो भस्मासीत्कटाक्षज्वलनकणिकया द्रागुमाकामुकस्य ॥२७

⊙

अङ्गामोदसमोच्छलद्घृणिपतद्भृङ्गावलीमालित-
स्फूर्जल्लाञ्छनसूत्रगुम्फितमिलन्नीलोत्पलश्रीरिव ।
निर्यत्पादनखोन्मुखांशुविसरस्त्रग्दन्तुरः स्मर्यतां,
मञ्जुश्रीः सुरमुक्तमञ्जरिशिखावर्षैरिवाभ्यर्चितः ॥२८

⊙

शस्त्रोद्यद्बाहुदेहस्फुरदनलमिलद्धूमकल्पान्तपुञ्जः,
शृङ्गान्तानन्तविश्वार्पितमहिषशिरोमक्षिकालीविकल्पः ।
त्रासत्यक्तस्वपर्णास्तृतसुरघृणये वाजसत्पादवृन्दस्
तारोघप्लुष्टभानुर्जगदवतु नटन्भैरवात्मा कुमारः ॥२९

किं वाच्यो महिमा महाजलनिधेर्यस्येन्द्रवज्राहतस्,
त्रस्तो भूभृदमज्जदम्बुनिचये कौलीलपोताकृतिः ।
मैनाकोऽपि गभीरनीरविलुठन् पाठीनपृष्ठोच्छल-
च्छैवालाङ्कुरकोटिकोटरकुटीकुड्यान्तरे निर्वृतः ॥३०

⊙

गाढग्रन्थिप्रफुल्लद्गलविकलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि-
ज्वालानिष्टप्तचन्द्रद्रवदमृतरसप्रोषितप्रेतभावाः ।
उज्जृम्भा बभ्रुनेत्रद्युतिमसकृदसृक्तृष्णयालोकयन्त्यः,
पान्तु त्वां नागनालग्रथितशवशिरः श्रेणयो भैरवस्य ॥३१

⊙

बालोऽद्यापि किलेति लक्षितमलंकर्तुं निजैर्भूषणै
रामाभिश्चिरमुद्यते हृदि लिहन्निच्छामनिच्छां वहन् ।
स्निह्यत्तारमथान्यदृष्टिविरहे यः संमुखं वीक्षितो,
नम्रः स्मेरमुखीभवन्निति वयः सन्धिश्रियालिङ्गितः ॥३२

⊙

नितम्बश्रीः कं न स्वगतमितयानं जनयति,
स्तनाभोगो मुग्धे! हृदयमपरस्यापि हरति ।
तवाक्ष्णोऽपभ्रष्टं स्मरकरशरेन्दीवरदलं,
मुखं तद्यस्येन्दुः प्रथमलिखनप्रोञ्छनपदम् ॥३३

⊙

सा नेत्राञ्जनतां पुनर्व्रजति मे वाचामयं विभ्रमः,
प्रत्यासन्नकरग्रहेति च करी हस्तोदरे शायितः ।
एतावद्बहु यद्बभूव कथमप्येकत्र मन्वन्तरे,
निर्माणं वपुषो ममोरुतपसस्तस्याश्च वामभ्रुवः ॥३४

⊙

गाढावधः कृतवलित्रितयौ सुसङ्गौ,
तुङ्गौ स्तनाविति तयो स्तलमार्तमागात् ।
तस्याः स्फुटं हृदयमित्यपि न स्मरेषून्तौ
रक्षतः प्रविशतो विमुखोऽथ वा क्व ॥३५

दरम्लानं वासो लुलितकुसुमालंकृति शिरः,
श्लथालोकं चक्षुः सरसनखलेखाङ्कितमुरः ।
लसत्काञ्चीग्रन्थिस्फुरदरुणरत्नांशुजघनं,
प्रियाङ्गोन्मृष्टाङ्ग्या विषमिदमियद्भावकनृणाम् ॥३६

⊙

धिग्धिक्त्वामयि केन दुर्मुखि ! कृतं किं किं न कायव्रतं,
द्वित्राण्यत्र दिनानि को न कुपितः को नाभवन्मानुषः ।
स्मः केचिन्न वयं यदेकमपरस्याप्युक्तमाकर्ण्यताम्,
अत्युन्माथिनि चन्दनेऽपि नियतं नामाग्निरुत्तिष्ठति ॥३७

⊙

कृत्वागः स च नागतोऽपि किमपि व्यक्तं मनो मन्यते,
तत्क्वासे कमुपैमि जङ्गमवने को मामिहाश्वासयेत् ।
इत्युक्त्वाश्रुगलन्मुखी विटसखी ध्वस्ता विशन्ती गृहं,
धन्येनाधिमुपाश्रुणोरसि कृत्यात्यन्तं प्रिया रोदिता ॥३८

⊙

उन्मील्याक्षि सखीर्न पश्यसि न चाप्युक्ता ददास्युत्तरम्,
नो वेत्सीदृशमत्र नेदृशमिमां शून्यामवस्थां गता ।
तत्पादृश्यकरङ्कपञ्जरमिदं जीवेन लिप्तं मनाङ्,
मुञ्चन्ती किमु कर्तुमिच्छसि कुरु प्रेमान्यदेशागते ॥३९

⊙

पान्थे पद्मसरोऽन्तशाद्वलभुवि न्यस्याञ्चलं शायिनि,
त्वं श्रान्तास्यवहं च वर्त्म वसतिग्रामो न वेलाप्यगात् ।
उत्तानद्विगुणासमञ्जसमिलज्जानूदरास्तांशुक-
स्तोकोन्मीलदसञ्जितोरु वयमप्येकाकिनः किं न्विदम् ॥४०

⊙

नीरेऽस्मिन्नमृतांशुमुत्सुकतया कर्तुं करे कौतुकिन्,
मा निम्नेऽवतरार्जवादियमधस्तस्य प्रतिच्छायिका ।
मर्त्येऽस्य ग्रहणं क्व दर्शनसुधाप्युन्मुक्तनेत्रश्रियां,
स्वर्लोकेऽपि लवः शवेश्वरजटाजूटैकचूडामणिः ॥४१

जन्म व्योमसरःसरोजकुहरे मित्राणि कल्पद्रुमाः,
क्रीडा स्वर्गपुरन्ध्रिभिः परिचिताः सौवर्णवल्लीस्रजः ।
अप्यस्मादवतार एव भवतो नोन्मादभेरीरवः,
सम्यक्मूर्छितकेलयः पुनरिमे भृङ्ग द्विरभ्याहतिः ॥४२

⊙

अङ्गेनाङ्गमनुप्रविश्य मिलतो हस्तावलेपादिभिः,
का वार्ता युधि गन्धसिन्धुरपतेर्गन्धोऽपिचेत्के द्विपाः ।
जेतव्योऽस्ति हरेः स लाञ्छनमतो वन्दामहे तामभूद्,
यद्गर्भे शरभः स्वयंजय इति श्रुत्वापि यो नाङ्कितः ॥४३

⊙

यन्नीडप्रभवो यदञ्जनरुचिर्यत्खेचरो यद्द्विजस्,
तेन त्वं स्वजनः किलेति करटैर्यत्तैरुपब्रूयसे ।
तत्रातीन्द्रियमोदिमांसलरसोद्गारस्तवैष ध्वनिर्,
दोषोऽभूत्कलकण्ठनायक ! निजस्तेषां स्वभावो हि सः ॥४४

⊙

यन्मार्गोद्धुरगन्धवातकणिकातङ्कार्तिनानादरी-
कोणाकुञ्चदुरोनिगूहितशिरः पुच्छा हरीणां गणाः ।
दृप्यद्दुर्दमगन्धसिन्धुरजयोत्खातेऽपि कामं स्तुतः,
स्मेरोऽयं शरभः परां हृदि घृणामायाति जातिस्मरः ॥४५

⊙

किं वाच्यो महिमा महाजलनिधेर्यत्रेन्द्रवज्राहति-
त्रस्तो भूभृदमज्जदम्बुविचलत्कौलीलपोताकृतिः ।
मैनाकोऽपि गभीरनीरविलुठत्पाठीनपृष्ठोल्लसच्-
छैवालाङ्कुरकोटिकोटरकुटीकुड्यान्तरे निर्वृतः ॥४६

⊙

जीयासुः कलिकालकर्णकजगद्दारिद्रचदारूदर-
व्याघूर्णद्घुणचूर्णलङ्घिमजुषस्त्वत्पादयोः पांसवः ।
लक्ष्मीसद्मसरोजरेणुसुहृदः सेवावनम्रीभवद्-
भूमीपालकिरीटरत्नकिरणज्योत्स्नानदीवालिकाः ॥४७

Scanned by CamScanner

नमस्य: प्रज्ञावान् परिकलितलोकत्रयगतिः,
सुखी मूर्खः सोऽपि स्वगतमहिमाद्वैतहृदयः ।
अयं मा भूत्कश्चित्प्रतनुमतिकिर्मीरितमनः,
समाधानोन्मीलत्सदसदिति संदेहविधुरः ॥४८

⊙

अन्यादानाकुलान्तः करणवशविपद्बाधितप्रेतरङ्कं,
ग्रासभ्रश्यत्करालश्लथपिशितशवाग्रग्रहे मुक्तनादम् ।
सर्वैः क्रामद्भिरुल्काननकवलरसव्यात्तवक्त्रप्रभाभिर्,
व्यक्तैस्तैः संवलद्भिः क्षणमपरमिव व्योम्नि वृत्तं श्मशानम् ॥४६

⊙

जातानन्तरमेव यस्य मधुरां मूर्तिश्चिरं पश्यतः,
सद्यःपुत्रमहोत्सवागतवधूवर्गस्य शृङ्गारिणः ।
उन्नीयान्ययुवास्यकालिमकरीं तारुण्यरम्यामिमां,
धन्यं जन्म सहामुनैकसमयं न प्राप्य तप्तं हृदा ॥५०

⊙

मधुर्मासो रम्यो विपिनमजनं त्वं च तरुणी,
स्फुरत्कामावेशे वयसि वयमप्याहितभराः ।
व्रजत्वम्बा मुग्धे ! क्षणमिह विलम्बस्व यदि वा,
स्फुटस्तावज्जातः पिशुनवचसामेव विषयः ॥५१

उमापतिधर

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एवं शरणः श्लाघ्यो दुरुहद्रुतेः ।
श्रृङ्गारोत्तर – सत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन–
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥

——गीतगोविन्द

Scanned by CamScanner

उमापतिधर

उमापतिधर की रचना, सामान्य-जन-जीवन, उनकी मनः स्थिति, लोक-परिवेश, लोक मानसी-वृत्ति, प्रवृत्ति, आस्था अनास्था के विविध-पक्षीय चित्रण प्रस्तुत करती है। कवि कभी प्रकृति के निसर्ग-मणि सूर्य-चन्द्र की छवि से अपनी उद्भावनाओं को प्रतिच्छवित करता, कभी लोक जीवन के सुख-अभाव-भूमि पर विचरता, कभी रसमय-सहकार-प्रकृति-संग साहचर्य संजोता, मानवीय रागानुराग-उद्वेलित सहृदय रसभार बना और कभी कौसुम्भवसना-संध्या को परिणयोत्सव सम्भार जुटाता प्रतीत होता है--

कौसुम्भवसनरुचिरां सन्ध्यां परिणीय मन्दमनुयान्तीम् ।
वासालयमिव जलधिं रागी पुरतो रविर्विशति ॥

रवि ने स्वर्ण वर्ण-वस्त्रावेष्टित रुचिर सन्ध्या को परिणीत कर लिया है और वह अपने निवासस्थल जलधि में अनुराग-रंजित भावित-हृदय आगे-आगे प्रवेश कर रहा है, परिणीता सन्ध्या उसका अनुगमन कर रही है। कवि को राजसभा का वैभव-विलास सम्भवतः कृत्रिम एवं मात्र प्रदर्शनमूलक प्रतीत होता है, इस कारण वह शुभ्र-अवदात-ज्योतिसूत्रवाहो-फलधारक और विशालशाखा-प्रशाखा से सनाथ शाल्मली तरु का वर्णन करते हैं--

प्रसारः शाखानां स्थगितगनाभोगमहिमा,
समृद्धिः शोणाम्भोरुहवनसमाना सुमनसाम् ।
प्रकाण्डश्रीर्वाचामपि न विषयः शाल्मलितरो-
स्तथाप्यंशुश्रेणीमयमनुपयोग्यं वत फलम् ॥

हे शाल्मलि तरु! तुम्हारी शाखाओं का यह नभो विस्तार-महिमा, रक्तविमल-वन-सदृश सुघर-समृद्धि, तुम्हारी श्रीसम्पन्नता अनि-

Scanned by CamScanner

वंचनीय है किन्तु अवदात-किरणों से पूर्ण यह तुम्हारा फल उपभोग-अनुकूल नहीं है। ऐसी ही स्थिति उस समृद्धिवान् की होती है जो उदार सहृदय नहीं है।

स्थित-काल

हमारे संकलन के अन्य कवियों की स्थिति-सदृश उमापतिधर की स्थिति अन्धकार में नहीं है। डा० हरदत्त शर्मा का (सदु०: भूमिका। पृष्ठ ४१) पर कथन है सेनशासन के उत्तरकाल में ये हुए हैं। गीतगोविन्द तथा अन्य ग्रन्थों में इनका नाम उद्धृत है। सम्भवतः श्रीधरदास के समकालिक हैं। अभी तक प्राप्त कृतियों में (देवपारा-अभिलेख) विजय-सेन प्रशस्ति है। केटलागस कैटलागारम् में (पृष्ठ ७०) तेरह उमापति-धर की चर्चा है। जयदेव ने 'गीतगोविन्द' में इस कवि का उल्लेख 'वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः' कहकर किया है--

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां,
जानीते जयदेव एवं शरणः श्लाघ्यो दुरुहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन–
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः॥

स्पष्ट है उमापति (उमापतिधर) का जयदेव को ज्ञान था। यह जयदेव बंगाल-नृपति वैद्य लक्ष्मणसेन की सभा में आदृत रहे। हरदत्तशर्मा ने उमापति (धर) को श्रीधरदास का समसामयिक बताया है। यह नृप लक्ष्मणसेन के माण्डलीक थे और इन्होंने ही लगभग १२०५ ईसवी सन् में 'सदुक्तिकर्णामृतम्' की रचना की थी। उमापतिधर भी इसी लक्ष्मणसेन नृप के मंत्री रहे। जयदेव का स्थिति-काल बारहवीं शती का पूर्वभाग है तथा समसामयिकता के आधार पर हम उमापतिधर को भी इसी कालावधि में सीमित करेंगे। इनके द्वारा रचित एक काव्य 'चन्द्रचूडतरितम्' में किसी चाणक्यदेव नृप के आश्रय में होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। एक छन्द--

निष्पन्ने सति चन्द्रचूडचरिते तत्तन्नृपप्रक्रिया–
जातैः सार्द्धमरातिराजकशिरोरत्नावलीनां चयम्।
तप्तस्वर्णशतानि विंशतिशतीरुप्यस्य लक्षत्रयं,
ग्रामाणां शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचन्द्रो ददौ॥

Scanned by CamScanner

'सदुक्तिकर्णामृतम्' में संगृहीत है। वह छन्द उमापतिधर का न होकर 'कैटलागस कैटलागरम्' में चर्चित तेरह उमापतिधर धारकों में से किसी एक का होना चाहिए। अस्तु।

कवि उमापतिधर

उमापतिधर ने लोक-ललक, लोक की वृत्ति-प्रवृति, लोक ईहा तथा लोक भावों का निदर्शन अपनी रचना का विषय बनाया। प्रतीत होता है कि कवि अपनी प्रवृत्ति नहीं स्वीकार किया, साथ यह भी है कि वह लोक जीवन के एक श्रेष्ठ कवि हैं। यद्यपि उनकी रचना यत्र-तत्र वैभव-विलास-जनित मधु मदिर भावों का भी अंकन करती है, तथापि उसे उसकी मुखापेक्षी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने, सर-सरोवर, नद-नदी, सूय-चन्द्र, कमल-भ्रमर, वृक्ष आदि का भी चित्रण किया है और नायक-नायिका को भी विषय बनाया। एक हरिक्रीडा का देखिए--

> व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृत्तं वृन्दावनं वानरै-
> रुन्नक्रं यमुनाम्बुघोरवदनव्याघ्रा गिरैः सन्धयः।
> इत्थं गोपकुमारकेषु वदतः कृष्णस्य तृष्णोत्तर-
> स्मेराभीरवधूनिषेधिनयनस्याकुंचनं पातु वः॥

तमाल-वल्लरियों में व्याल हैं, वृन्दावन वानरों से व्याप्त है, यमुना-जल में नक्र हैं तथा पर्वत-विवरों (कन्दराओं) में विकराल मुखवाले व्याघ्र रहते हैं, इस प्रकार गोपबालों से, गोपिकाओं के निषेधार्थ प्रफुल्लानन कहते हुए श्रीकृष्ण के वक्र-नयन तुम सब की रक्षा करें। कवि ने न केवल कृष्ण किन्तु गणेश, शिव, गौरी, काली, भैरव आदि का भी स्तवन किया है।

कवि प्रकृति-सम्पदा पर भी मधुर दृष्टिपात कर उसमें संचित शिव-अशिव-उपादानों को रूपायित करना भी नहीं भूलता। वह कहीं भ्रमर की रस-लिप्सा, कहीं पुण्डरीक-सनाथ निर्मल-जलपूर्ण सरोवर में विचरण-रत-हंस-क्रीडा तो कहीं विभिन्न वृक्षों को प्रकृति-विश्लेषण करता दृष्टिगत होता है--

Scanned by CamScanner

अर्काः केचन केचिदक्षतरवः केचिद्दलक्ष्मारुहाः,
निंबाः केचन केचिदत्र विपिने क्रूराः करीरद्रुमाः ।
माकन्दो मकरन्दतुन्दिलमिलद्भृङ्गालिश्रृङ्गारितः,
कोऽप्यत्रास्ति न मित्र ! यत्र तनुतं कर्णामृतं कोकिलः ॥

वृक्ष तो अनेक हैं—कहीं अर्क (मन्दारतरु) कहीं अक्ष (विभीतक-बहेरा) कहीं निंब, कहीं वनप्रान्त में करीरवृक्ष हैं, भले ही परागाधिक्यवशात् आकृष्ट भ्रमर-पंक्ति से शोभित हो, परन्तु मित्र कोई भी ऐसा नहीं है जहाँ कान को अमृतरस-सदृश कोकिल का स्वर सुनायी पड़े। इसी प्रकार आम्रतरु की प्रशस्ति –

सुगन्धिः कोऽपि स्यात्कुसुमसमये कोऽपि विटपी,
शक्ताटौ सामोदः फलपरिणतौ कोऽपि सुरभिः ।
प्रसूनप्रारम्भारत्प्रभृति फलपाकावधि पुन-
र्जगत्येकत्रैव स्फुरति सहकारे परिमलः ॥

किसी वृक्ष से उसके पुष्पित होते समय सुगन्धि का संचार होता है, किसी तरु में फल की परिणति होने पर सुरभि व्याप्त होती है किन्तु जगतीतल में एक मात्र आम्रतरु है जिसमें पुष्पित होने के काल से फल की परिपक्वता-पर्यन्त परिमल का सतत स्फुरण होता रहता है। कवि मानव मात्र ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों तक के मनोगत-भावों का चित्रण मनोज्ञतापूर्वत करता है। देखिए-प्रकृति के भयावह-स्वरूप का चित्रण तथा मनुष्य और मृग की मनः स्थिति—

व्योमार्धे ज्वलितो रविः कवलितं दावानलैः काननं,
धूम्याभिन्नं दिशः स्फुरन्ति परितः पन्थाः शिलादन्तुरः ।
इत्थं शोणितसिक्तसृक्कणि यथाप्राणं मृगे धावति,
व्याधेनाऽपि शरासने करुणया नारोपिताः पत्रिणः ॥

आकाश में सूर्य तप रहा है, दावानल ने कानन को ग्रास बना लिया है, अपार धूम राशि के कारण दिशाओं का ज्ञान कठिन, चारों ओर मार्ग आग की लपटों से आछन्न है (अग्नि-ज्वाला के कारण) रक्तसिक्त वायु-कणों के मध्य लेकर भागते हुए मृग पर करुणार्द्र-मन व्याध ने भी धनुष पर शर सन्धान नहीं किया।

●

Scanned by CamScanner

इनकी रचनायें

⊙

श्रुतिः सक्ता मुग्धे ! वचसि वदनेन्दौ निपतिता,
दृशः स्वादौ बिम्बाधरमधुनि मग्नेव रसना ।
निषण्णाभून्नासा निजपरिमले शैलदुहितु-
र्घनाश्लेषानन्दे वपुरपि विलीनं पुरभिदः ॥१

⊙

शम्भोरिन्दुकला शिवं दिशतु वो यस्याः प्रतिच्छायिकां,
त्रिस्रोतः पतितामनेककुटिलीभावं गतां वीचिभिः ।
सेनानीरवलोकते ध्वजपटाकूतेन कात्यायनी,
मल्लीदामसमीहया निजवधूबोधेन नागाधिपः ॥२

⊙

अमुद्रकुमुदत्विषः स्फुटितफेनलक्ष्मीस्पृशो,
मरालकुलविभ्रमाः शफरफाललीलाभृतः ।
जयन्ति गिरिजापतेस्तरलमौलिमन्दाकिनी-
तरङ्गचयचुम्बिनस्तुहिनदीधितेरंशवः ॥३

⊙

सद्यः प्रध्वस्तदेवासुरसरसशिरःश्रेणिशोणारविन्द-
स्रग्दामानद्धमूर्तेर्घनरुधिरकणक्लिन्नचर्मांशुकस्य ।
निष्पर्यायत्रिलोकीभवकवलरसव्यात्तवक्त्रस्य जीया-
दानन्दः कालरात्रीकुचकलसपरीरम्भिणो भैरवस्य ॥४

⊙

यानुद्धूलयतीश्वरः सिकतिला यैर्मौलिमन्दाकिनी,
यैर्बालेन्दुकणार्द्रकेतकदलीसङ्गे परागायितम् ।
यैः कैलासविलासकाननतटीकङ्केल्लिपुष्पोद्गम-
क्रीडाकार्मणमद्रिजाचरणयोस्ते रेणवः पान्तु वः ॥५

Scanned by CamScanner

ताराान्तर्ज्वलदग्निलक्षनयनश्वभ्रान्तकूपान्तरां,
क्रुद्धागस्त्यनिरस्तवारिधिपयः पातालनिम्नोदरीम् ।
वन्दे त्वामजिनावृतोत्कटसिरापृष्ठास्थिसाराकृतिं,
दंष्ट्राकोटितटोत्पतिष्णुदितिजासृक्चर्चितां चर्चिकाम् ॥६

⊙

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्ब चरणाम्बुजरेणवः ॥७

⊙

देव्याः श्रुतेर्दनुजदुर्णयदूषितायाः,
भूयः समुद्गमविधाववलम्बभुमिः ।
एकार्णवीभवदशेषपयोधिमध्य–
द्वीपं वपुर्जयति मीनतनोर्मुरारेः ॥८

⊙

आनन्दमुग्धनयनां श्रियमङ्कभित्तौ,
बिभ्रत्पुनातु भवतो भगवान्नृसिंहः ।
यस्यावलोकनविलासवशादिवासी,
दुत्सन्नलाञ्छनमृगः कमलामुखेन्दुः ॥९

⊙

कालिन्दीपुलिने मया न न मया शैलोपशल्ये न न,
न्यग्रोधस्य तले मया न न मया राधापितुः प्राङ्गणे ।
दृष्टः कृष्ण इतीरितस्य सभयं गोपैर्यशोदापते-
र्विस्मेरस्य पुरो हसन्निजगृहान्निर्यन् हरिः पातु वः ॥१०

⊙

भ्रूवल्लीचलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापि स्मित–
ज्योत्स्नाविच्छुरितैः कयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि ।
गर्वोद्भेदकृतावहेलविनयश्रीभाजि राधानने,
सातङ्कानुनयं जयन्ति पतिताः कंसद्विषो दृष्टयः ॥११

Scanned by CamScanner

व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृतं वृन्दावनं वानरै-
र्नक्रं यमुनाम्बु घोरवदनव्याघ्रा गिरेः सन्धयः ।
इत्थं गोपकुमारकेषु वदतः कृष्णस्य तृष्णोत्तर-
स्मेराभीरवधूनिषेधिनयनस्याकुञ्चनं पातु वः ॥१२

⊙

सायं व्यावर्तमानाखिलसुरभिकुलाह्वानसङ्केतनामा-
न्याभीरीवृन्दचेतोहठहरणकलासिद्धमन्त्राक्षराणि ।
सौभाग्यं वः समन्ताद्दधतु मधुभिदः केलिगोपालमूर्तेः,
सानन्दाकृष्टवृन्दावनरसिकमृगश्रेणयो वेणुनादाः ॥१३

⊙

रत्नच्छायाच्छुरितजलधौ मन्दिरे द्वारकायां,
रुक्मिण्यापि प्रततपुलकोद्भेदमालिङ्गितस्य ।
विश्वं पायान्मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्जे-
ष्वाभीरस्त्रीनिभृतरचितध्यानमूर्च्छा मुरारेः ॥१४

⊙

समुद्रमथनव्यग्रसुरसन्दोहनिस्पृहाः ।
लग्नाः कृष्णस्य वक्त्रेन्दौ पान्तु नो दृष्टयः श्रियः ॥१५

⊙

व्योमाम्भोनिधिपुण्डरीकममृतप्राधारधारागृहं,
भृङ्गारद्रुमपुष्पमीश्वरशिखालङ्कारमुक्तामणिः ।
कालाकारतमोभिभूतकुमुदग्रामाम मृत्युञ्जयो,
जीयान्मन्मथराष्ट्रपौष्टिकमहाशान्तिर्द्विजश्चन्द्रमाः ॥१६

⊙

वहति मलयशैलोपान्तविश्रान्तवल्ली-
नवकिसलयभङ्गक्षीरसौरभ्यबन्धुः ।
रहसि परिचितोऽयं पाण्ड्यसीमन्तिनीनां,
दरतरलितरेवातीरनीरः समीरः ॥१७

Scanned by CamScanner

न नयति बहुमानस्यास्पदं स्निग्धबन्धू-
न्न च गुणिनि समृद्धेऽप्यादरं याति ताते ।
न भजति धृतिमन्तर्नन्दनेष्वन्तरात्मा,
भवति हि पतिनिष्ठं प्रेम साध्वीजनस्य ॥१८

⊙

पत्युः केलिभिरस्थिषुच्छिदुरता मर्मक्षतिर्नर्मणा,
शृङ्गारेण गुरुव्यथा समुदयत्युच्चाटनं चाटुभिः ।
ध्यायन्त्याः सततोत्सुकेन मनसा नीरन्ध्रवानीरिणी-
राकौमारमुपास्यमानमुरलासीमाभुवः सुभ्रुवः ॥१९

⊙

कान्तिं कुङ्कुमकेशरान्मधुरतां द्राक्षारसस्यासवा,
द्वैदर्भीपरिपाकपूरवचसः काव्यात्कवेर्मार्दवम् ।
पार्श्वादेव जरातुरेण विधिना तं तं गृहीत्वा गुणं,
सृष्टा हन्त हरन्ति कस्य न मनः कश्मीरवामभ्रुवः ॥२०

⊙

हूणीनां हरिणाङ्कपाण्डुमधुरश्रीभाजि गण्डस्थले,
शोभां कामपि बिभ्रति प्रणिहिताः कश्मीरविच्छित्तयः ।
अप्यासां स्तनमण्डले परिणमन्मालूरगौरे श्रियं,
संधत्ते नवसान्ध्यरश्मिरुचिरं माञ्जिष्ठपट्टांशुकम् ॥२१

⊙

निद्राच्छेदकषायिते तव दृशौ दृष्टिर्ममालोहिनी,
वक्षो मुष्टिभिराहतं तव हृदि स्फूर्जन्ति मे वेदनाः ।
आश्चर्यं नवकुन्दकुड्मलशिखातीक्ष्णैरमीभिर्नखैः,
प्रत्यङ्गं तव जर्जरा तनुरहं जाता पुनः खण्डिता ॥२२

⊙

हारं पाशवदाच्छिनत्ति दहनप्रायां न रत्नावलीं,
धत्ते कण्ठकशङ्किनीव कलिकातल्पे न विश्राम्यति ।
स्वामिन्संप्रति सान्द्रचन्दनरसात्पङ्कादिवोद्वेगिनी,
सा बाला बिसवल्लरीवलयतो व्यालादिव त्रस्यति ॥२३

यदेतत्ते मौनं स्मितमुदयते यन्न वदने,
यदव्यक्ता दृष्टिर्यदभिमुखवामः स्थितिरसः ।
उपास्यानामीदृग्विमतिषु हतप्रश्रयतया,
हृदा दूरं याति प्रियसखि ! नवीनः परिजनः ॥२४

⊙

दिवसेऽपि धूममहिषोवाद्योत्सवदुर्दिनेषु मिलितायाः ।
नाकृतपुण्यः पश्यति रहसि मुदा वदनक्रममेणाक्ष्याः ॥२५

⊙

मौलौश्यामसरोजदाम नयनद्वन्द्वेऽञ्जनं कर्णयो-
स्तापिच्छप्रसवः कपोलफलके कस्तूरिकापल्लवः ।
विश्वालोकविलोपि निन्दितमपि प्रेयोभिसाराशया,
हृष्यद्भिः स्मरदुर्विनीतवनितास्तोमैस्तमो मन्यते ॥२६

प्रणयि वचनं दीना दृष्टिः शिरोनिहितोऽञ्जलि-
श्चरणपतनं देव्याः सन्ति प्रसादनहेतवः ।
कुसुमविशिखज्वालातापस्फुटन्मृदुमानसा,
वरतनुरसौ येन प्राप्या स एव तु नास्ति मे ॥२७

⊙

वाचः परं भजन्त्येता देवि ! प्रणयचातुरीम् ।
हृदयस्य तु सर्वस्वं त्वमेवैकाप्रिया मम ॥२८

●

रहसि सततोत्सङ्गन्यासादजस्र......
....मर्षान्नित्यस्तवार्पणकेलिभिः ।
अनिशचरणोपान्तस्पर्शान्निरन्तरचुम्बनै-
रपिखलुतया....लेख्यैः स चित्रपटीकृतः ॥२९

●

यस्तापः शमितो मृगाङ्कजगतां या म्लानिरुन्मूलिता,
यामिन्या गगनस्य याः स्मृतिपथं नीतास्तमोवीचयः ।

Scanned by CamScanner

यत्क्षामत्वमपाकृतं जलनिधेर्यः कैरवाणां हृतो,
मोहस्तत्कथमत्र दुःखिनि जने सर्वं समावेशितम् ॥३०

⊙

क्वाऽपि स्वेदकणानिपातमसृणं कुत्राऽपि कम्पस्खल-
त्पाणिव्यस्तलिपि क्वचिद्घनपतद्बाष्पाम्बुलिप्ताक्षरम् ।
क्वाऽपि श्वासमहोर्मिमर्मरमिदं ताडङ्कताडीदलं,
वर्णैरेव विना व्यनक्ति सुदृशो भावैकतानं मनः ॥३१

⊙

दूरोदञ्चितबाहुमूलविलसच्चीनप्रकाशस्तना-
भोगव्यायतमध्यलम्बिवसना निर्मुक्तनाभीह्रदा ।
आकृष्टोज्झितपुष्पमञ्जरिरजः पातावरुद्धेक्षणा,
चिन्वत्याः कुसुमं धिनोति सुदृशः पादाग्रदुःस्था तनुः ॥३२

⊙

कङ्केल्लिरेष किमचेतन एव सत्यं,
नम्रः स्वयं न कुसुमानि ददाति यस्ते ।
धूर्तोऽथवा नमति नायमुदस्तबाहु-
व्यक्तोन्नतस्तनतटान्तदिदृक्षयेव ॥३३

●

कौसुम्भं कुचकुम्भयोर्निवसनं सौवर्णिकं कर्णयो-
स्ताडङ्कद्वयमाञ्जनी नयनयोरालेख्यलेखालिपिः ।
काश्मीरेण तमालपत्रमलिके हैमो करे कङ्कण-
श्रेणिः पाशयितुं जगन्त्यलमलङ्काराः कुरङ्गीदृशः ॥३४

●

धत्ते व्यक्तिं रसितमसकृज्जर्जरं झर्झराणां,
स्तोकोत्तुङ्गध्वनितलहरी . . . . ।
. . . . स्निग्धैः करकिसलयैराहताः किन्नराणां,
शब्दायन्ते नवघनघटामन्द्रमन्द्रदङ्गाः ॥३५

Scanned by CamScanner

विलोला भ्रूवल्ली मसृणतरला दृष्टिरधरः,
स्मितस्निग्धो धीरा गतिरलसमेवाङ्गचलनम् ।
स्वभावप्रव्यक्तोन्नतनतविभागा तनुलता,
विभावो लास्येन स्फुरति कतरोऽस्या मृगदृशः ॥३६

⊙

भयमुकुलितचक्षुः संततोत्कम्पनीवी,
मणिमुखरितकाञ्चिः श्वासशुष्यन्मुखश्रीः ।
अशिथिलभुजबन्धन्यासनिःशङ्कलग्ना,
मम वपुषि विशन्तीवायताक्षी धिनोति ॥३७

●

कौसुम्भवसनरुचिरां सन्ध्यां परिणीय मन्दमनुयान्तीम् ।
वासालयमिव जलधिं रागी पुरतो रविर्विशति ॥३८

⊙

आकृष्टश्चक्रवाकैर्नयनकलनया बन्धकीभिर्निरस्तो,
नास्तं द्रागेति भानुर्निवसति नलिनीबोधनिर्व्रान्तराले ।
सन्ध्यादीपप्ररोहं बहुलतिलरसव्याप्तपात्रान्तरालं,
वासागारे दिशन्ती हसति नववधूक्रोधदृष्टाभुजिष्या ॥३९

⊙

हंसाः संप्रति पक्षतौ सुनिभृतं कृत्वा शिरः शेरते,
ज्योत्स्नाभिस्तृपिताः समं सहचरैः सुप्ताश्चकोरस्त्रियः ।
घूर्णद्भिः कुमुदोदरेष्वपि मधुक्षीबैः स्थितं षट्पदै-
रत्युच्चैर्गिरिशृङ्गमूर्धनि भृशं निर्यान्त्यमी बर्हिणः ॥४०

⊙

आरक्तायतपुष्पबाणनयने स्निग्धाञ्जनश्यामिकां,
काश्मीरारुणकर्णिकारकुसुमोत्तंसे महानीलताम् ।
उन्मीलत्तिलकान्तरे मृगमदक्षोदार्द्रबिन्दूपमाम्,
धत्ते मुग्धतमालकान्तिमधुपीवृन्दं वसन्तश्रियः ॥४१

आ वाचां व्यक्ततायाः कविपदविषयेष्वाचचष्टे समन्यो,
मुक्तास्माभिर्न कोऽपि स्मरपदमवनौ संस्तुतः सत्यमेतत् ।
मिथ्यैतद्भोः कथं रे ननु शतमकृथाः कुन्तलेन्द्रस्य तत्त-
त्काव्यस्तोत्राणि धिक् त्वां जडमय न मनोरेव मूर्तिप्रभेदः ॥४२

⊙

अश्रान्तविश्राणितयज्ञयूप-
स्तम्भावलीद्राग्गवलम्बमानः ।
यस्य स्वाभावाद्भुवि संचचार,
कालक्रमादेकपदोऽपि धर्मः ॥४३

⊙

बालास्तालमहीरुहो घनदलस्निग्धा गृहप्राङ्गणे,
सूक्ष्मेभ्यस्तव संदिशन्ति सुचिरं जीव प्रसन्ने त्वयि ।
कर्णालंकृतकेन कोमलदलं मुञ्चन्ति नो निर्दया,
निःस्वश्रोत्रियवल्लभाः श्रुतियुगे हैमस्फुरत्कुण्डलाः ॥४४

⊙

उच्छिद्राणि दिगम्बरस्य वसनान्यर्धाङ्गनास्वामिनो,
रत्नालङ्कृतभिर्विशोषितवपुः शोभाः शतं सुभ्रुवः ।
पौराढ्याश्च पुरीः श्मशानवसतेर्भिक्षाभुजोप्यक्षमा,
लक्ष्मीं न व्यतनोद्दरिद्रभरणेष्वज्ञो हि सेनान्वयः ॥४५

⊙

मुक्ताः कर्पासवीजैर्मरकतशकलं शाकपत्रैरलाबू-
पुष्पैरुप्याणि रत्नं परिणतिभिदुरैः कुक्षिभिर्दाडिमीनाम् ।
कूष्माण्डीवल्लरीणां विकसितकुसुमैः काञ्चनं नागरीभिः,
शिक्ष्यन्ते त्वप्रसादाद्बहुविभवजुषां योषितः श्रोत्रियाणाम् ॥४६

⊙

गन्धेभस्कन्धकण्डूमदगुरुमरुदुल्लोललौहित्यखेल-
द्वीचीवाचालकालाचलरिपुशशिना केलितल्पे निषण्णाः ।
कामिन्यः सैनिकानां विधुतविधुरताभीतयो गीतबन्धै-
र्यस्य प्राग्ज्योतिषेन्द्रप्रणतिपरिगतं पौरुषं प्रस्तुवन्ति ॥४७

Scanned by CamScanner

राजन्नुद्दामनिद्राभरविवशभुजावल्लरीणामिदानीं,
विश्राम्यन्तु त्वदन्तःपुरहरिणदृशां चामरभ्रामणानि ।
सेवन्ते देवमेते तुहिनकणभृतः सौधजालान्तराल-
प्राप्ताः प्रत्यग्रजाग्रन्नलिनवनरजोग्राहिणो गन्धवाहाः ॥४८

⊙

आकौमारं समरजयिना कुर्वतोर्वीमवीरा-
मेतेनामी कथमिव दिशामीशितारो विमुक्ताः ।
अन्तर्ज्ञातं वपुषि कलया तस्य तेष्टौ प्रविष्टाः,
प्रह्वीभूते प्रभवति नहि क्षत्रियाणां कृपाणः ॥४९

⊙

न्यञ्चन्नीवीनिबद्धान्यकलिततिलकान्यक्वणत्कङ्कणानि,
भ्रश्यन्मञ्जीरशिञ्जान्यचलितवलयस्रञ्जि धौताञ्जनानि ।
अप्रेङ्खत्तारहाराण्यवसितहसितश्रोणि शीर्णालकानि,
त्रुट्यत्सिन्दूरबिन्दून्यसकृदकृत यः शात्रवान्तःपुराणि ॥५०

⊙

भूचक्रं कियदेतदावृतमभूद्यद्वामनस्याङ्घ्रिणा,
नागानां कियदास्पदं यदुरसा लङ्घन्ति गूढाङ्घ्रयः ।
एकाहाद्यदनूरुरञ्चति कियन्मात्रं तदप्यम्बरं,
यस्येतीव यशो ह्रिया त्रिभुवनं व्याप्याऽपि नो तृप्यति ॥५१

⊙

गृहाद् गृहमुपागतं व्रजति पत्तनं पत्तना-
द्वनाद्वनमनुद्रुतं भ्रमति पादपं पादपात् ।
गिरेर्गिरिमधिश्रितं तरति वारिधिं वारिधे-
र्यदीयमरिसुन्दरीनिकरपृष्ठलग्नं यशः ॥५२

⊙

छिन्ते ब्रह्मशिरो यदि प्रथयति प्रेतेषु सख्यं यदि,
क्षीबः क्रीडति मातृभिर्यदि रतिं धत्ते श्मशाने यदि ।
सृष्ट्वा संहरति प्रजा यदि तदाप्याधाय भक्त्या मन-
स्तं सेवे करवाणि किं त्रिजगती शून्या स एवेश्वरः ॥५३

रात्रावोषधयो ज्वलन्ति कलयन्त्यौज्ज्वल्यमप्यग्नयो,
ज्योत्स्नाश्चन्द्रमसि स्फुरन्ति दधति ज्योतींषि तेजस्विताम् ।
अन्यच्च क्रिमयोऽपि बिभ्रति महोलेशानमुष्यैव ताः,
सर्वा एव निधेस्त्विषां भगवतो दीप्तिप्रतिच्छायिकाः ॥५४

⊙

विश्वेषां दधता प्रबोधपदवीं येनानुषङ्गात् कृताः,
स्वेषामम्बुरुहां श्रियः स भगवानुष्णोऽपि सेव्यो रविः ।
शीतेनाऽपि किमिन्दुना यदुदये तस्यैव यद्बान्धवै-
रुद्बुद्धं कुमुदैरिदं तु शिरसा कृत्स्नं जगद् घूर्णते ॥५५

⊙

नेत्रायातपथव्यतीतपयसः सन्त्येव नद्यः शतं,
प्रायश्चित्तमुपाचरन्ति कृतिनः स्पृष्ट्वैव यासां पयः ।
या दृष्ट्वैव पुनाति विश्वमखिलं सेयं पुनर्जाह्नवी,
विच्छिन्ना क्वचिदाविला क्वचिदतिस्वल्पाम्बुशोष्या क्वचित् ॥५६

⊙

अमीषामुष्णांशोः किरणनिकराणां परिचया-
त्सरस्तीक्ष्णं माभूस्तव किल निसर्गः शिशिरिमा ।
दुरात्मानो ह्येते कतिपयपयोबिन्दुरसिका-
न्निरस्यन्तः पान्थांस्त्वयि किमपि शोषं विदधति ॥५७

⊙

क्षुद्रास्ते भुजगाः शिरांसि नमयत्यादाय येषामिदं-
भ्रातर्जाङ्गुलिक ! त्वदाननमिलन्मन्त्रानुविद्धं रजः ।
जीर्णस्त्वेष फणी न यस्य किमपि त्वादृग्गुणीन्द्रव्रजा-
कीर्णक्ष्मातलधावनादपि भजत्यानम्रभावं शिरः ॥५८

⊙

कान्तिस्ते यदि निर्मला यदि गुणा लक्ष्मीर्यदि स्थायिनी
भागाः पद्म मदं तथापि गलिता ह्येते शरद्वासराः ।
संस्पर्शेन तुषारवारिपृषतामालूनमूर्तेः सरो-
मध्येऽत्रैव वराटकेन भवतः स्थेयं पुनः केवलम् ॥५९

इह परिमलो यत्र व्यक्तो न तत्र मधुश्रियो,
मधु समधिकं यस्मिंस्तस्मिन्न गन्धसमृद्धयः ।
इति मरुवकं निन्दन्कुन्दादपेतकुतूहलः,
कमलमधिकं स्मारं स्मारं विषीदति षट्पदः ॥६०

⊙

ग्राम्यमग्रे करेणुं स्वयमुपनतया येन बद्धोऽसि पाशै-
र्येन क्षुण्णं शिरस्ते सृणिभिरमसृणैर्येन वाह्यः कृतोऽसि ।
तत्पादाङ्गुष्ठसंज्ञापरवशहृदयो द्रष्टुकामानमन्तू-
ञ्जन्तूनभ्येषि हन्तुं त्वमसि गजपते ! सत्यमेको मदान्धः ॥६१

⊙

व्योमार्धे ज्वलितो रविः कवलितं दावानलैः काननं,
धूम्याभिन्नं दिशः स्फुरन्ति परितः पन्थाः शिलादन्तुरः ।
इत्थं शोणितसिक्तसृक्वणि यथाप्राणं मृगे धावति,
व्याधेनाऽपि शरासने करुणया नारोपिताः पत्रिणः ॥६२

⊙

नाम्भोभिः प्रसवैः स्वयं निपतितैर्भूमौ विधत्ते धृतिं,
नारोढुं परिपाकमेदुरफलाः शक्नोति शाखाशिखाः ।
अप्रज्ञातनिजप्रभावकुपितः कोकूयमानो रुषा,
कूर्दन् वानरसूनुरेष लवलीक्षोणीरुहं कर्षति ॥६३

⊙

नोन्मीलन्तु नितम्बिनीकरतलस्पर्धाभृतः पल्लवाः,
प्रत्युद्यान्तु न वैणनाभिमधुरामोदाः प्रसूनश्रियः ।
नाभूवन्फलसंपदो मधुरसप्रस्यन्दभाजस्तथा-
प्यश्वत्थस्य गतः सुखेन जगतां वन्द्यस्य जन्मग्रहः ॥६४

⊙

साक्षान्नैष करोति कामपि मुदं नादृत्य हन्त्यापदो,
न प्रीणाति मनीषिणां श्रवणमप्याश्वासनासूक्तिभिः ।
तस्याम्भोधिसुतापतेर्भगवतोऽधिष्ठानमात्रादसौ,
दुःस्वप्नान्विनिवेदितानपहरत्यश्वत्थभूमीरुहः ॥६५

पत्राणि त्रुटितानि कीटपटलैरामूलमुन्मूलिता:,
शाखा वन्यमतङ्गजैर्न करभैरास्वाद्य मुक्ता त्वच: ।
स्थाणु: केवलमस्ति पिप्पलतरोस्तत्रापि शीतातुरै-
र्ग्रामीणै: परित: कुठारपतनारम्भ: परामृश्यते ॥६६

⊙

सुगन्धि: कोऽपि स्यात्कुसुमसमये कोऽपि विटपी,
शलाटौ सामोद: फलपरिणतौ कापि सुरभि: ।
प्रसूनप्रारम्भात्प्रभृति फलपाकावधि पुन-
र्जगत्येकत्रैव स्फुरति सहकारे परिमल: ॥६७

⊙

केषांचित्कुसुमोदयादनु विना तेनाऽपि केषांचन,
स्फायन्ते धरणीरुहामिह दिनैर्द्वित्रै: फलश्रेणय: ।
पुष्पश्रेणिषु पद्मरागपदवीपत्रेषु कान्ताकर-
श्रीरित्येव फलादृते वत गत: कङ्केलिजन्मग्रह: ॥६८

⊙

प्रसार: शाखानां स्थगितगगनाभोगमहिमा,
समृद्धि: शोणाम्भोरुहवनसमाना सुमनसाम् ।
प्रकाण्डश्रीर्वाचामपि न विषय: शाल्मलितरो-
स्तथाप्यंशुश्रेणीमयमनुपभोग्यं बत फलम् ॥६९

⊙

पृथुत्वात्सौरभ्यान्मधुरतरभावाच्च पतितै:,
क्षुधोतप्तै: कुक्षिंभरिभिरिह सेवा तव कृता ।
तदात्वव्यामुग्धैरनुदिवसमस्वास्थ्यजननी,
न दृष्टा तेऽस्माभि: पनस ! परिणामे विरसता ॥७०

⊙

भ्रामं भ्राममनङ्गभूपरिसरे सारङ्ग ! निश्चापलं,
वास्तव्यो भव मा पुनर्मरुपथप्रस्थानवाञ्छां कृथा: ।
यत्रादुर्बलदोर्बलैर्गुणगणव्यासक्तपात्रान्तरै-
र्लभ्यन्ते पुरुषै: परं कतिपयै: कौपा: पयोबिन्दव: ॥७१

भ्रातः पान्थ ! मरीचिकामयमृषावाः पूरपूर्णामिमा-
मद्दिश्य प्रबलप्रसृत्वरतृषावक्लेषान्ध किं धावसि ।
नन्वेते मरुमेदिनीपरिसरा यैरस्ति गोपायितं,
क्रूरैर्न स्वपरोपकारि सकलं पातालमूले पयः ॥७२

⊙

छायामाश्रय पुण्डरीकमिलितां मध्ये शरःशीकरं,
सानन्दो भव राजहंस भवतः स्यान्नाम पक्षोन्नतिः ।
मञ्जीरेण तथापि च ध्वनिरयं निर्गीयते लीलया,
योऽस्माकं परिचारिकाचरणयोः खेलाभिरुत्कूजति ॥७३

⊙

एकत्र प्रकृतैः साम्यमन्यत्र परतन्त्रता ।
शुकस्य परितोषाय न वनं न च पत्तनम् ॥७४

⊙

दन्तैरुत्पतितं स्फुरन्ति वलयो निष्कालिमानः कचाः,
शीर्णदेहमपेतमेव करणग्रामेण लुप्ता मतिः ।
अस्मिन्नप्रतिकारदारुणजराव्याधौ दयार्द्रात्मना,
भ्रातर्वैद्य ! विधीयते तव कियद्यावन्मया भेषजम् ॥७५

⊙

तेनाखानि जलावगाहनरसव्यासक्तपौराङ्गना-
पर्यस्यत्कवरीविशीर्णकुसुमस्मेरोर्मिमालं सरः ।
यस्मिन्नच्छतया निधाय नयने मर्त्यैः सकौतूहलं,
लक्ष्यन्ते भुजगाधिराजनगरीवामभ्रुवां विभ्रमाः ॥७६

⊙

अमरयुवतिगीतोद्ग्रीवसारङ्गश्रृङ्गो-
ल्लिखितशशिसुधाम्भः शाद्वलारामरम्याम् ।
सुरपतिगजगण्डस्रंसिदानाम्बुधारा-
प्रसवसुरभिमाशां वासवीयां नमामि ॥७७

Scanned by CamScanner

साधु म्लेक्षनरेन्द्र साधु भवतो मातैव वीरप्रसू-
र्नीचेनाऽपि भवद्विधेन वसुधा सुक्षत्रिया वर्तते ।
देवे कुप्यति यस्य वैरिपरिषन्माराङ्कमल्ले पुरः,
शस्त्रं शस्त्रमिति स्फुरन्ति रसनापत्रान्तराले गिरः ॥७८

⊙

आलङ्कानाथनारीस्तनतरलपयोवीचिमुद्रातसमुद्रा-
दास्वर्गङ्गातरङ्गावलिविरलशिलादुस्तरादुत्तराद्रेः ।
आ प्राक्शैलासुरस्त्रीसुरतगतिविदो मग्नभास्वन्मृगाङ्का-
दा च प्राचेतसाब्धेर्भवतु मम पुरः कोऽपि यद्यस्ति वीरः ॥७६

⊙

निष्पन्ने सति चन्द्रचूडचरिते तत्तन्नृपप्रक्रिया-
जातैः सार्द्धमरातिराजकशिरोरत्नाञ्जलीनां त्रयम् ।
सप्तस्वर्णशतानि विंशतिशतीरूप्यस्य लक्षत्रयं
ग्रामाणां शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचन्द्रो ददौ ॥८०

⊙

जितेयं दोर्दर्पाज्जलधिपरिवेशा वसुमती,
शिरः क्षौणीन्द्राणां निजचरणपीठे विलुठितम् ।
कृतं दत्तं भुक्तं कृतमपि कुले यत्समुचितं,
कृतार्थं तीर्थेषु भ्रमणमधुना वाञ्छति मनः ॥८१

⊙

नृत्यद्वेतालमालावलयितविकटप्रान्तमुड्डामरोग्र-
प्रक्रीडड्डाकिनीकं प्रतिपदमुदयत्पूतनोत्फाललीलम् ।
उत्खेलत्कोलकेलीकवलितविघसग्राससंसक्तगृध्रा-
कृष्टनस्थिप्रमोदं न जनयति कथं दृश्यमानं श्मशानम् ॥८२

⊙

अलमादिवराहेण वटुदासं परं स्तुमः ।
जगदुद्धरता येन न वक्रीकृतमाननम् ॥८३

⊙

हिमगिरितनयामयार्द्धमूर्तिस्तुहिनशिलासृतसिन्धुबद्धमौलिः ।
शशिकरकलाकृतावतंशो हरतु शिवः परितापमान्तरं वः ॥८४

चूडाभस्मकणाङ्किताविव जटापत्राञ्चलेनामृशन्,
नेत्राग्निद्युतितापिताविव करैः सिञ्चन् सुधादीधितेः ।
नागश्वासकलङ्किताविव मुहुर्गङ्गाजलैः क्षालयन्,
मानिन्याश्चरणौ गिरीन्द्रदुहितुर्भूत्यै गिरीशोऽस्तु वः ।।८५

⊙

स्वाधीनो रसनाञ्चलः परिचिताः शब्दाः कियन्तः क्वचित्,
क्षोणीन्द्रो न नियामकः परिषदः शान्ताः स्वतंत्रं जगत् ।
तद्यूयं कवयोः वयं वयमिति प्रस्तावनाह (हु ?) ङ् कृति-
स्वच्छन्दं प्रतिसद्म गर्जत वयं मौनव्रतालम्बिनः ।।८६

⊙

तापो नापगतस्तृषाऽपि न कृशा धौता न धूली तनो-
र्न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः का नाम केलीकथा ।
दूरोन्मुक्तकरेण हन्त करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी,
प्रारब्धो मधुपैरकारणमयं झंकारकोलाहलः ।।८७

⊙

यस्यास्संभृतमालवालवलयं भूपालभृङ्गारिणी-
भृङ्गारोदरविप्रलम्भविधुरैर्नीरैस्सुधाबन्धुभिः ।
तामेतां मृदुलप्रवालललितां द्राक्षालतामारट-
न्नुद्ग्रीवः प्रकटीकृतार्धदशनो दाशेरकः कृन्तति ।।८८

⊙

अर्काः केचन केचिदक्षतरवः केचिद्दलक्ष्मारुहाः,
निंबाः केचन केचिदत्र विपिने क्रूराः करीरद्रुमाः ।
माकन्दो मकरन्दतुन्दिलमिलद्भृङ्गालिभृङ्गारितः,
कोऽप्यत्रास्ति न मित्र ! यत्र तनुते कर्णामृतं कोकिलः ।।८९

⊙

दिक्चक्रं तृणभस्मना मलिनितं मूलान्यपि क्ष्मारुहा,
निर्दग्धानि न चार्भकोऽपि हरिणीयूथेऽवशेषीकृतः ।
हा कष्टं विपिनौकसोऽपि मुनयः प्लुष्टाः कृतान्तक्रियां,
कृत्वेत्थं वनवह्निना किममुना शान्तेन दीप्तेन वा ।।९०

Scanned by CamScanner

त्वञ्चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां,
व्यालैः कङ्कणकुण्डलानि कुरुषे हानिर्न हेम्नः पुनः ।
मूर्ध्ना चेद्वहसे जडांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी-
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥९१

⊙

मृणालीहारोऽयं न भुजगपतिश्चन्दनरसो,
न भस्मेदं कण्ठे कुवलयदलाली न गरलम् ।
सिताम्भोजं पाणौ लसति न कपालं मयि मुधा,
पुरारातिक्रोधात् स्मर ! किमनभिज्ञः प्रहरसि ॥९२

⊙

स्तोकारक्तनखव्रणा स्तनतटी क्वापि स्खलच्चन्दनं,
वक्षः कर्बुरिताञ्जने च नयने विश्रान्तरागोऽधरः ।
आयासोदयमन्थरं च गमनं प्रातः प्रभङ्गालसं,
जीयादङ्गमनङ्गसङ्गरपरिच्छेदे कुरङ्गीदृशः ॥९३

⊙

भस्मोद्धूलन ! भद्रमस्तु भवतो रुद्राक्षमाले शुभं,
हा सोपानपरंपरे ! गिरिसुताकान्तालयालङ्कृते ।
अद्याराधनतोषितेन विभुना युष्मत्सपर्यासुखा-
लोकोच्छेदिनि मोक्षनाम्नि महामोहे निधीयामहे ॥९४

⊙

निर्मग्नेन मयाम्भसि प्रणयतः पाली समालिङ्गिता,
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे ! मुधा ताम्यसि ।
इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणो,
रुक्मिण्या शिथिलीकृतः सकपटं कण्ठग्रहः पातु वः ॥९५

⊙

वर्षन्ति स्तनयित्नवो न सरले धारागृहे वर्तते
गर्जन्ति प्रतिकूलवादिनि न ते द्वारिस्थिता दन्तिनः ।
इत्येवं गमितो घनव्यतिकरः सा राजपुत्री पुन-
र्वाते वाति कदम्बपुष्पसुरभौ केन प्रतारिष्यते ॥९६

Scanned by CamScanner

उत्पन्नेव दृशोर्चिशा कुसुमितेवेन्दोः करैर्भोगिभिः
सारोहेव जटाटवी फलतु वः श्रेयो भवानीपतेः ।
यत्पर्यन्तविवर्ति नः सुरसरित्पूरस्य भूरिस्फुर-
त्फेनेण्डूकविलासमञ्चति विधेर्जीर्णा कपालावली ॥९७

⊙

श्यामायाः करजक्षतं रतिपतेर्जैत्रं धनुर्बन्धकी-
हृत्कम्बुक्रकचश्चकोरखुरली सौहृद्यबीजाङ्कुरः ।
चोरग्रामगजांकुशः परिलसन्मन्दाकिनीरोहितो
ध्वान्ताम्भस्तरणैकनौरुदयते बालः सुधादीधितिः ॥९८

⊙

क्षिपति दयिते दृष्टिं वक्रामपाङ्गतरङ्गिणीं
हसितमनभिव्यक्तं मध्ये दधाति कपोलयोः ।
मृदु मदकलं किंचिद्वाक्यं कथंचन मुञ्चती,
हरति हृदयं प्रौढेवेयं नवापि नितम्बिनी ॥९९

⊙

निर्धौताञ्जनलक्ष्मनेत्रमरुणोच्छूना कपोलस्थली
क्रान्तेवाधरपालिरस्फुटमिलल्लेखा तटी पार्श्वयोः ।
निद्राघूर्णितनिष्प्रयत्नशिथिलान्यङ्गानि ते तद्वयं
नो विद्मः सखि ! संमुखः स भगवान् कस्याद्य पुष्पायुधः ॥१००

⊙

मीलच्चक्षुरनुलक्षं पुलकिनी धत्से यदन्तर्मुदं
सावज्ञं यदुपान्तसंकुचितया दृष्ट्या पतिं पश्यसि ।
यद्वक्रास्वपि वेषभासितकलास्वभ्यासमालम्बसे
तन्मन्ये सखि ! नागरस्य विषयं कस्यापि यातासि किम ॥१०१

⊙

स्कन्दे मन्दावधानं चरति गणपतौ मौलिपातं न धत्ते
वृन्दे वृन्दारकाणां विनयवति भृशं नादरानातनोति ।
किं भूम्ना यश्च देवीं न नमति गिरिजां तस्य निर्व्याजवृत्तेः
क्षीणस्याप्येकनिष्ठा जयति भगवती भृङ्गिणस्तस्य भक्तिः ॥१०२

⊙

गुणवत्पक्षपराङ्मुखि स्वजनकुलोच्छेदबद्धनिर्बन्धे ।
अपि वीरवंशवैरिणि भगवति भवितव्यते जयसि ॥१०३

एते विवादितश्लोकाः सन्ति

⊙

प्रियायाः प्रत्यूषे गलितकबरीबन्धनविधा-
वुदञ्चद्दोर्वल्लीदर चलितलोलाञ्चलमुरः ।
घनाकूते पश्यत्यथ मयि समन्दाक्षहसितं,
नमन्त्यास्तद्वक्त्रं यदि लिखितुमीशो मनसिजः ॥१०४

⊙

घ्रातं तालफलाशया स्तनयुगं विम्बभ्रमेणाधरो,
दष्टः पाकविकीर्णदाडिमधिया लीढाः स्फुरन्तो रदाः ।
क्षुत्क्षामैर्विफलश्रमैरिति वने त्वद्वैरिवीराङ्गना,
निद्राणा मुहुरादृता मुहुरपि क्षिप्ताश्च शाखामृगैः ॥१०५

⊙

नयनमसि जनार्दनस्य शंभो-
र्मुकुटमणिः सुदृशां त्वमादिदेवः ।
त्यजसि न मृगमात्रमेकमिन्दो,
विरमति येन कलङ्कः किं वदन्तो ॥१०६

⊙

कियत्पदं विष्णुपदं क्रमेऽस्य मे,
धरा वराकी च पयोधिरोधिना ।
इतीव हेलापरिनम्रकन्धरः,
करोत्ययं मण्डलिकारयं हयः ॥१०७

Scanned by CamScanner

शरण

ग़ोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मस्य च ॥

विजयसेनप्रशस्ति

Scanned by CamScanner

शरण

इस सूक्ति कवि का इतिहास योगेश्वर और केशट आदि अन्य सूक्ति रचनाकारों की अपेक्षा किञ्चिद् प्रकाशमान हैं-- उमापतिधर के आश्रयदाता लक्ष्मणसेन के सभामंडप में उत्कीर्ण शिलालेख तथा जयदेव के गीतगोविन्द में उल्लेख हैं--

गोबर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ।।

उक्त श्लोक के अनुसार लक्ष्मणसेन की राजसभा के गोवर्धन, शरण, जयदेव, उमापति तथा कविराज (श्रुतधर) रत्न थे ।

वाचः पल्लवत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां,
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाध्यो दुरुहद्रुतेः ।
श्रृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन —
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतःश्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ।।

इसमें गीतगोविन्दकार जयदेव स्वयं कहते हैं-- उमापतिधर वाणी के पल्लवन में शरण क्षिप्रगति एवं क्लिष्टकाव्य प्रणयन में, आचार्य गोवर्धन भी श्रृङ्गारस सिक्त रचना में निपुण किन्तु श्रुतधर (सुनने मात्र से स्मृति में संजोनेवाले) पवनदूत के रचयिता धोयी कवि का प्रतिद्वन्दी कोई नहीं हैं । अर्थ यह है कि शरण जयदेव के समसामयिक रहे ।

कैटलागस् कैटलागरम् (पृष्ठ ६३७) में उल्लेख है–शरण, शरणदेव, चिरन्तनशरण कदाचित् तीनों नाम एक ही कवि के हैं, ये जयदेव के समकालिक थे । कवि की सदुक्तिकर्णामृतम्, पद्यावली और गीतगोविन्दम् में जयदेव ने चर्चा की है । सदुक्तिकर्णामृतम्' की भूमिका (पृष्ठ १२४) का उल्लेख, जनरल आंफ एशिया-

Scanned by CamScanner

टिक सोसायटी बंगाल (सन् १९०६ पृष्ठ १७३) के अनुसार भी तीनों नाम एक ही कवि का है।

स्थिति-काल

उमापतिधर–सहित शरण का भी लक्ष्मणसेन की राजसभा में उपस्थित होना और जयदेव द्वारा 'गीतगोविन्दम्, (१.४) में उल्लेख से जयदेव का सामयिक होना संकेतित करता । जयदेव बारहवीं शती के पूर्वभाग में पैदा हुए, उसी कालावधि में उमापतिधर भी स्थित रहे, उमापतिधर के साथ उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि शरण भी उमापतिधर के सामयिक थे। इस विवरण से यही प्रतीत होता है कि ये भी बारहवीं के शती के पूर्व भाग में किसी समय में थे।

'जनरल आंफ एशियाटिक सोसायटी' बंगाल के उल्लेखानुसार ही शरण, शरणदेव एवं चिरन्तनशरण तीनों को एक ही कवि स्वीकार कर सुभाषितकारों ने छन्द संकलित किया है। हमारे संग्रह में प्राप्त छन्द भी इस तथ्य के प्रकारान्तर से प्रमाण हैं। गीतगोविन्दकार कवि जयदेव का कथन––'शरणश्श्लाध्यो दुरुहद्रृते': के उल्लेख से शरण क्लिष्ट काव्य का प्रणेता है। यह काव्य-रचना में अद्भुत क्षमतावाला कवि है––

> इयं सा कालिन्दी कुवलदलस्निग्धमधुरा,
> मदान्धव्याकूजत्तरुणजलरङ्कुप्रणयिनी ।
> पुरा यस्यास्तीरे सरभससतृष्णं मुरभिदो,
> गताः प्रायो गोपीनिधुवनविनोदेन दिवसाः ॥

सूक्ति-कवि कालिन्दी यमुना नदी के व्याज से कुमुद श्रीकृष्ण तथा गोपिकासमूह की केलि-क्रीड़ा का स्मरण कर रहा है–कुमुददल से प्रभासमान, उज्ज्वल तथा सुखद यह वह यमुना है, जिसमें तरुण जलरंकु (बगुला)की प्रया (प्रणयिनी) मदोन्मादयुक्त कूजन करती है, प्राचीन समय में जिस यमुना के तीर पर उत्कट तृष्णावाले मुरारि के कई दिन गोपीजन के लीला–बिलास–जनित विनोद में ही व्यतीत हो गये हैं। शरण स्निग्धभावों ये अंकन, प्रकृति की निसर्ग–अनुकृति के प्रतिबिम्बक, मानव-हृदय के सदय-रस वर्षण का चतुर–चितेरा,

Scanned by CamScanner

उसी कालिन्दी को प्रणय भावों की एक सुधापयस्विनी-रूप में कितनी परिष्कृत-पदावली द्वारा अंकित कर रहा है--

कालिन्दीमनुकूलकोमलरयामिन्दीवरश्यामला:,
शैलोपान्तभुवः कदम्बकुसुमैरामोदिनः कन्दरान् ।
राधां च प्रथमाभिसारमधुरां जातानुतापः स्मर-
न्नस्तु द्वारावतीपतिस्त्रिभुवनामोदाय दामोदरः ॥

त्रिभुवन मात्र के मोद और सुख-मूल द्वारावती-पति दामोदर (श्रीकृष्ण) कालिंदी (यमुना) की अनुकूल जल-प्रवाह-गति से आलोड़ित नीलकमल से श्यामवर्ण पर्वत की पार्श्ववर्ती-भूमि एवं कदम्बपुष्पों से आच्छन्न (गिरि) गह्वरो तथा लीलापूर्ण उन दिनों (जब मिलने के लिए वहाँ राधा का आगमन होता था) स्मरण कर अनुताप से आक्रान्त हैं।

यह सूक्ति-कवि, विषय, वृत्ति अथवा प्रवृत्ति विशेष में प्रवृत्त ही काव्यरचनाभिमुख हुआ नहीं प्रतीत होता । वह स्वच्छन्द किन्तु संयमित चिन्तनधारा का कवि है, परिणामतः उसके काव्य में विविध विषयों का समावेश सहजतः चक्षुगोचर हो जाता है । लोक भावों की मर्यादा-रक्षण, लोकानुभोग, और लोकचिन्तन के अमृत-प्रवाह से अपनी काव्य-वधूटी को स्नान करा कल्पना द्वारा उसे संवारना-सजाना उसका अभिप्रेत है--

उन्मीलद्यौवनासि प्रियसखि ! विषमाः श्रेणयो नागराणां,
तस्मात्कोऽपि त्वयाद्य प्रभृति न सहसा संमुखं वीक्षणीयः ।
यावच्चन्द्रार्कमेकः पतिरतिशयितश्रद्धया सेवितव्यः,
कर्तव्या रूपरक्षा वचसि च हृदयं देयमस्मद्विधानाम् ॥

इस छन्द में कवि देश, काल एवं उसकी सीमा-स्थिति को अपनी सूक्ष्मदृष्टि द्वारा अनुभूत कर अक्षरों और शब्दों में गुम्फित करना चाहा है । कुलटा की द्वर्थी वार्ता बड़ी आसानी से काव्य भाषा में सहेज रहा है । प्रियसखि ! तुम्हारा यौवन प्रस्फुटित हो रहा है, नागरजनों में विविध-श्रेणी के हैं, इस कारण सावधान रहो, आज से ही भविष्य में कभी भी सहज भाववश उनके सम्मुख तुम आंख उठा-कर देखना नहीं । जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, अत्यन्त श्रद्धा-सहित

Scanned by CamScanner

एक पति की ही सेवापरायण रहना चाहिए, वचन में वाणी द्वारा अपने रूप के रक्षणार्थ तत्पर रहे एवं इस प्रकार जनो से हृदय को अनुक्त रखे। एक छन्द कृष्ण-स्तुति का भी देखें--

एकेनैव चिराय कृष्ण ! भवता गोवर्धनोऽयं धृतः,
श्रान्तोऽसि क्षणमास्स्व साम्प्रतममी सर्वे वयं दध्महे।
इत्युल्लासितदोष्णि गोपनिवहे किञ्चिद्‌भुजाकुञ्चन-
न्यञ्चच्छैलभरार्दिते विरमति स्मेरो हरिः पातु वः॥

हास, विलास और रस-रास को कृष्ण-प्रकृति का कितना सुष्ठुतम चित्रण हुआ है--गोप-गोपिका समाज ने कृष्ण अधिक काल तक आप इस पर्वत गोवर्धन को अकेले ही धारण किये (उठाये हुए हैं,) कुछ क्षण के लिए, विश्राम कर लें, आप श्रान्त हैं, तब तक इसे हम लोग सम्हालते हैं, कहा तो उनके उल्लास को देख, कृष्ण ने अपनी बाहु तनिक सिकोड़े कि पर्वत झुकने लगा और गोप-समाज में कोलाहल मच गया, इस दशा को देखकर मुसकान-छवि विखेरनेवाले हरि (श्रीकृष्ण) आप सबकी रक्षा करें।

महाकवि जयदेव की उक्ति-'दुरुहद्रुतेः' निम्नलिखित छन्द में प्रतिमूर्त हो रही है--

असमंजसमसमंजसमसमंजसमेतदापतितम् ।
बल्लवकुमारबुद्‌ध्या हरि हरि हरिरीक्षितः कुतुकात् ॥

• •

•

इनकी रचनायें

⊙

कालिन्दीमनुकूलकोमलरयामिन्दीवरश्यामला:,
शैलोपान्तभुवः कदम्बकुसुमैरामोदिनः कन्दरान् ।
राधां च प्रथमाभिसारमधुरां जातानुतापः स्मर-
न्नस्तु द्वारवतीपतिस्त्रिभुवनाऽऽमोदाय दामोदरः ।।१

⊙

कामं कामयते न केलिनलिनीं नामोदते कौमुदी-
निस्यन्दैर्न समीहते मृगदृशा मालापलीलामपि ।
सीदन्नेष निशासु दुःसहतनुर्भोगाभिलाषालसै-
रङ्गैस्ताम्यति चेतसि व्रजवधूमाधाय मुग्धो हरिः ।।२

⊙

वृत्ते साङ्विवाहमङ्गलविधौ लब्धापि दैत्यद्रुहः,
सौहार्दे विमनाः पुनातु भवतो लक्ष्मीः स्मरन्ती पितुः ।
यामाश्वासयतीव सोदरतया प्रत्यग्रविम्बग्रह-
व्याजादङ्कगतामनंकुशनिजस्नेहो मुहुः कौस्तुभः ।।३

⊙

नेपथ्यं भूतभर्तुस्त्रिदशपरिषदां जीवनं यामिनीना-
मुत्तंसः पांसुलानां कुलरिपुरमृतस्त्रोतसामादिशैलः ।
आतङ्कः पङ्कजानां जयति रतिकलाकेतनं मीनकेतोः,
सिन्धूनामेकबन्धुः कुमुदसमुदयानन्दकन्दोऽयमिन्दुः ।।४

⊙

उन्मीलद्यौवनासि प्रियसखि ! विषमाः श्रेणयो नागराणां,
तस्मात्कोऽपि त्वयाऽद्य प्रभृति न सहसा संमुखं वीक्षणीयः ।
यावच्चन्दार्कमेकः पतिरतिशयितश्रद्धया सेवितव्यः,
कर्तव्या रूपरक्षा वचसि न हृदयं देयमस्मद्विधानाम् ।।५

पा०--२१

Scanned by CamScanner

आराध्यः पतिरेव तस्य च पदद्वन्द्वानुवृत्तिर्व्रतं,
केनैताः सखि ! शिक्षितासि विपथप्रस्थानदुर्वासनाः ।
किं रूपेण न यत्र मज्जति मनो यूनां किमाचार्यकै-
र्गूढानङ्गरहस्ययुक्तिषु फलं येषां न दीर्घं यशः ॥६

⊙

बाष्पैर्निष्पतयालुभिः कलुषिता गण्डस्थली चिन्तया,
चेतः कातरितं तरङ्गितमुरः श्वासोर्मिभिः पीवरैः ।
इत्थं त्वद्विरहे तदीयविपदं देवी त्रियामैव वा,
तल्पं वा परितापखिन्नमथवा जानाति पुष्पायुधः ॥७

⊙

पर्यस्तस्तनकर्मकीर्णकवरीभारं समुन्मूलित-
स्रग्दाम स्वयमन्यदेव तदुपक्रान्तं मया साहसम् ।
संपन्नाः सखि ! तस्य केलिविधयः प्राच्याः परं दुर्वह-
श्रोणीभारभरान्मनीषितसहस्रांशोऽपि नासादितः ॥८

⊙

पीयूषं विषमप्यसूत जलधिः कान्तेः कलङ्कस्य च,
स्थानं शीतरुचिः स्वभावकठिनो दाता च कल्पद्रुमः ।
अक्षीणप्रणयामृतस्य कलुषैरस्पृष्ट मूर्ते रसं-
क्षिप्तत्यागरसोदयस्य भवतः साम्यं समभ्येतु कः ॥९

⊙

सेव्यश्चिन्तामणिर्वा सुरतरुरथवा रोहणो वा गिरीणां,
भर्ता वा जातकोपे त्वयि निखिलमहादाननिर्व्याजवीरे ।
एकश्चैतन्यशून्यस्त्यजति कठिनतां नापरश्छेदखेदं,
धत्तेऽन्यः किं नराणमधिपतिरपरः कस्त्वयाभ्यर्थनीयः ॥१०

⊙

प्रीतस्त्वं वेदवादैर्मम तु निरवधिर्नाथ निर्वेदवादः,
साकूतस्त्वं कलासु प्रतिदिनविकला वृत्तिरेका ममैव ।
साध्यस्त्वं भावशुद्धया मम तु विजयते कोप्यभावस्तदित्थं,
लीलारामो गुणानां मम विगुणनिधेः कैरुपायैरुपास्यः ॥११

Scanned by CamScanner

भ्रूक्षेपाद्गौडलक्ष्मीं जयति विजयते केलिमात्रात्कलिङ्गां-
श्वेतश्चेद्दक्षितीन्दोस्तपति वितपते सूर्यवद्दुर्जनेषु ।
स्वेच्छान्म्लेच्छान्विनाशं नयति विनयते कामरूपाभिमानं,
काशीभर्तुः प्रकाशं हरति विहरते मूर्ध्नि यो मागधस्य ॥१२

⊙

त्वन्नेत्रेऽपि तवाननेऽपि भवतः पाणावपि त्वत्पदे-
ष्वस्ति स्मेरसरोजसौहृदसमाकृष्टैव पद्मालया ।
यन्नीता निजभावमर्थिभिरसौ त्वद्दृष्टिपातैस्त्वदा,
देशात्त्वत्करविभ्रमैरपि भवत्पादप्रसादादपि ॥१३

⊙

भ्रमति गिरिराट् पृष्ठे गर्जत्युपश्रुतिसागरो,
दहति विततज्वालाजालो जगन्ति विषानलः ।
स तु विनिहितग्रीवाकण्ठः कटाहपुटान्तरे,
स्वपिति भगवान्कूर्मो निद्राभरालसलोचनः ॥१४

⊙

निष्पन्नाः कति नाम नामरपुरोपान्तेषु भूमीरुहः,
श्लाघ्यस्तत्र स एव कल्पविटपी यत्रासतेमी गुणाः ।
संकल्पाः फलदोहदानि फलितं रत्नानि वृत्तिर्जग-
त्क्लेशच्छेदनिदानमुन्नतिरनुल्लङ्घ्या यशो दुर्जयम् ॥१५

⊙

एताश्चन्द्रोदयेऽस्मिन्नविरलमुषलोत्क्षेपदोलायमान-
स्निग्धश्यामाग्रपीनस्तनकलसनमत्कण्ठनालाग्ररम्याः ।
उद्वेल्लद्बाहुवल्लीप्रचलितवलयश्रेणयः पामराणां,
गेहिन्यो दीर्घगीतिध्वनिर्जनितसुखास्तण्डुलान्कण्डयन्ति ॥१६

⊙

रज्जुक्षेपरयोन्नमद्भुजलताव्यक्तैकपार्श्वस्तनी,
मूत्रच्छेदविलोलशङ्खवलयश्रेणीझणत्कारिणी ।
तिर्यग्विस्तृतपीवरोरुयुगला पृष्ठानतिव्याकृता-
भोगश्रोणिरुदस्यति प्रतिमुहुः कूपादपः पामरी ॥१७

Scanned by CamScanner

एतास्ता दिवसान्तभास्करदृशो धावन्ति पौराङ्गनाः,
स्कन्धप्रस्खलदंशुकाञ्चलधृतिव्यासङ्गबद्धादराः ।
प्रातर्यातकृषीवलागमभिया प्रोत्प्लुत्य वर्त्मच्छिदो-
हट्टक्रीतपदार्थमूल्यकलनव्यग्राङ्गुलिग्रन्थयः ॥१८

⊙

देवः कुप्यतु वा विचिन्त्य विनयं प्रीतोऽस्तु वा मादृशै-
र्वाञ्छद्भिः प्रभुकीर्तिमप्रतिहतां वक्तव्यमेवोचितम् ।
सेवाभिर्यदि सेनवंशतिलकादासादनीयाः श्रियः,
संकल्पानुविधायिनः सुरतरोस्तत्केन हार्यो मदः ।१९

⊙

दृष्ट्वा तोयभरावनम्रनिविडप्रारम्भमम्भोधरं,
तृष्णार्तः किल रौति यावदसकृत्तोयाशया चातकः ।
तावच्चञ्चलचञ्चुकोटरकुटीकोष्ठे लुठन्तः स्फुटं,
दृश्यन्ते करकोत्कराः किमपरं कोप्येष वामो विधिः ॥२०

⊙

इयं सा कालिन्दी कुवलयदलस्निग्धमधुरा,
मदान्धव्याकूजत्तरुणजलरंकुप्रणयिनी ।
पुरा यस्यास्तीरे सरभससतृष्णं मुरभिदो,
गताः प्रायो गोपीनिधुवनविनोदेन दिवसाः ॥२१

⊙

असमंजसमसमंजसमसमंजसमेतदापतितम् ।
बल्लवकुमारबुद्ध्या हरि हरि हरिरीक्षितः कुतुकात् ॥२२

⊙

मुरारिं पश्यन्त्याः सखि ! सकलमङ्गं न नयनं,
कृतं यच्छृण्वन्त्या हरिगुणगणं श्रोत्रनिचितम् ।
समं तेनालापं सपदि रचयन्त्या मुखमयं
विधातुर्नैवायं घटनपरिपाटीमधुरिमा ॥२३

Scanned by CamScanner

अंगुष्ठाग्रिमयंत्रितांगुलिरसौ पादार्धनीरुद्धभू-
रार्द्रीकृत्य पयोधराञ्चलमलं द्वित्रैः पयोबिन्दुभिः ।
न्यग्जानुद्वयमध्ययंत्रितघटीवक्त्रान्तरालस्खल-
द्धाराध्वानमनोहरं सखि ! पयो गां दोग्धि दामोदरः ॥२४

⊙

एकेनैव चिराय कृष्ण ! भवता गोवर्धनोऽयं धृतः,
श्रान्तोऽसि क्षणमास्स्व साम्प्रतममी सर्वे वयं दध्महे ।
इत्युल्लासितदोष्णि गोपनिवहे किंचि भुजाकुंचन-,
न्यञ्चच्छैलभरार्दिते विरुवति स्मेरो हरिः पातु वः ॥२५